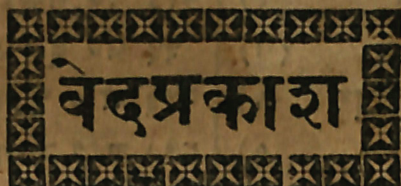
REGISTERED No. A. 102

ओ३म्



हैदराबाद शास्त्रार्थ

का परिणाम

वेदस्य गौरवं "वेदप्रकाशः" सुप्रकाशयेत् ।
तद्वारकतमोराशिं समन्ताच्च विनाशयेत् ॥

वेदोक्त-धर्म-प्रतिपादन और तद्विरुद्ध-मत-निराकरणविषयक

वर्ष ७ Vo. 7	मासिक पत्र Monthly Paper	मास ३।४।५ No. 3,4,5

जो

पं०तुलसीराम स्वामी सम्पादक और प्रकाशक द्वारा तदीय (मेशीनयुक्त)स्वामियन्त्रालय मेरठ में प्रकाशित होता है

श्रावण संवत् १९६० ॥ २८ । ५ । १९०३ ई० (१५।७ । ०३)

१-वार्षिक अग्रिम मूल्य १) पश्चात् १।) मेरठ में अग्रिम ।।।) पश्चात् १)

२-नमूनेमात्र का अङ्क जिन सज्जनों के पास भेजा जायगा यदि वे ग्राहक होने को पत्र न लिखेंगे तौ दूसरी कापी न भेजी जायगी । इस कारण नाम, ग्राम, डाकघर, ज़िला के पते सहित पत्र अवश्य लिखें ॥

३-सर्वसाधारण के समाचार (ख़बर) भी संक्षिप्त छपते हैं ॥

४-विज्ञापन की बंटाई एक बार में ५) ली जायगी और विज्ञापन पर "वेदप्रकाश का क्रोडपत्र" यह तिथिसहित छपा होना चाहिये ॥

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

मूल्यप्राप्ति एप्रिल, म, जून १९०३

८०३ बा० ललिताप्रसाद रामपुर १)
२२८ बा० मुकुन्दलाल आरा १)
५५३ डा० हनुमान्सिंह मैसूर १॥)
२०५ डा० रामप्रसाद नरसिंहपुर १)
८७२ ला० मन्नूलाल कालपी १)
८७५ रा० रा० कुबेरदास अहमदाबाद १)
१९ ला० विश्वम्भरसहाय सदर मेरठ १)
४३० बा० केवलराम रबूपुरा १)
६०८ ला० बालमुकुन्द सहावर १-)
६५ पं० राजपति शर्मा कानपुर २॥-)
८०० बा० गौरीशङ्कर नौशेरा १)
८८३ ला० गुलज़ारीलाल गवां १)
५२९ रा० रा० चुन्नीलाल मोहपानी १।)
५०५ बा० सुन्दरलाल पिछौर १)
२५३ आ० स० हरदोई १)
८७६ बा० केशरीसिंह नरसिंहगढ़ १)
२४५ डा० रामलग्नसिंह पैंडरिया १)
७०३ ठा० बनवारीलाल कुवरापुर १)
८७४ बा० अवधविहारीलाल रांची १)
८८९ ला० वासुदेव अलवर १)
८८५ ला० मङ्गलसेन बहरायच १)
८८४ ला० देवकृष्ण मडियाहू १)
२३८ बा० हीरालाल भरूच १)
८८६ ठा० रामहर्षसिंह कटांवा १)
६५३ बा० राजाराम सीखड़ १)
८७० डा० ज्वालाप्रसाद डिब्रिगढ़ १)
८८७ ला० हरिश्चन्द्र झींद १)
८९१ बा० गोपीनाथ दीनानगर १)

८९० रा० रा० गोविन्द जीवराज मुम्बई १)
८१३ पं० गङ्गादत्त जी कोटा ॥)
५५ पं० दङ्गीलाल जी इटावा १)
८९५ ला० चन्दूलाल हैदराबाद द० १)
८९४ बा० योगानन्दम् हैदराबाद द० १)
८९९ रा० रा० भाई मणिआखू ऊधना १)
८९२ ला० हरिराम भाभड़ा १)
८९७ पं० विट्ठलराव गुलवर्गा १)
९०३ बा० गिरधारीलाल नरसिंहगढ़ १)
८९५ पं० भवानीशङ्कर हैदराबाद द० १)
८१५ ला० गणेशीलाल छतारी १)
९०२ ला० वंशीधर करहल १)
२३४ बा० घासीराम एम० ए० मेरठ १)
१५० श्री ख़ूबचन्द जी कौड़िया १)
९०६ बा० हज़ारीलाल देहली १)
६४८ बा० अक्षयप्रसाद जफ़राबाद १)
९७ पं० दत्तशर्मा इटारसी १)
६३६ बा० हरदयालुसिंह गोंडा १)
४०३ बा० रङ्गीलाल खटीमा १)
९०८ पं० गौरीशङ्कर पिपरायच १)
९१० पं० विहारीलाल उझियानी १)
९०५ पं० गोपालराव गुलवर्गा १)
५७५ बा० बलिकरणसिंह वासना १)
९०९ बा० सीताराम मुम्बई १)
८४० श्री जीवनगिरि लभरा १॥)
९१२ पं० बनवारीलाल सिकन्दराबाद ॥)
६०६ ला० जगन्नाथ पीलीभीत १)
९१३ स्वा० ब्रह्मानन्द कांट १)
५१३ ला० सोहनलाल बमटापुर १)

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

ओ३म्

वेदप्रकाश

वर्ष ७ } वेदप्रणिहितो धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ { मास ३।४।५

उपदेशकपाठशाला एप्रिल, मे, जून १९०३ ई०

२८)॥। शेष १ । ४ ।०३ को गतमास का
२) ला० बेहूमल रघुनाथसहाय कवाल जिला मुज़फ़्फ़रनगर ने पुत्र के विवाह में दिये सो धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हैं ।

३०)॥। योग शेष २०)॥।

९ त्रिलोकीनाथ विद्यार्थीको भोजनार्थ।
॥) हवन सामग्री
॥) तैल व्यय

१०) योग

ओ३म्

वेदप्रकाश में ४॥ मास की देरी

के अनेक कारणों में प्रधान कारण हैद्राबाद का शास्त्रार्थ, उस का न होना, उस का पूर्ण वृत्तान्त एक वार छापने का उद्योग, वहां जाने से अनेक कार्यों का कार्यालय में पीछे पड़जाना, उन का यथासम्भव निबटाना, इस बीच में अनेक शङ्का और पत्रों के उत्तर देने आदि कार्य हुवे । आज यह मार्च एप्रिल और मई के ३ अङ्कों का समुदाय १२ फ़ार्म पर प्रकाशित किया जाता है । इस पर भी २ फ़ार्म के अनुमान हैदराबाद का वृत्तान्त शेष रह गया, जो आगामी अङ्कों में निकलेगा । आगामी अङ्क जून जुलाई के दो एक साथ शीघ्र निकलेंगे । हम पाठकों से क्षमा प्रार्थना के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकते ॥

इस बीच में वेदप्रकाश के तक़ाज़े और हैदराबाद का वृत्तान्त जानने के लिये अनुमान ७०० पत्र आये, जिन के उत्तर में प्रायः लिखा गया कि छपने पर शीघ्र वेदप्रकाश भेज कर उसी में हैदराबादीय वृत्त ज्ञात करावेंगे । तथापि जिन सज्जनों को डाक प्रमादादि किसी कारण से उत्तर न मिला हो वे भी क्षमा करें ॥

SGDF Sri Gurgaonkar Digital Foundation

ब्राह्मणसर्वस्व-इटावा

के इस बीच में वर्ष १ अङ्क १२ तक हम को मिले जिन पर हैदराबादीय वृत्तान्त के कारण अनवकाश से हम कुछ न लिख सके। अगले अङ्कों में उस का उत्तर अङ्क ९ से आगे देना आरम्भ करेंगे। पं० भीमसेन जी वा अन्यों को यह कभी न समझना चाहिये कि उस के उत्तर में वेदप्रकाश शान्त वा मौनी हो गया॥

समालोचना

१-शतपथ ब्राह्मण

मैं बड़े हर्ष के साथ प्रकट करता हूं कि जिस बहुव्ययसाध्य ग्रन्थ को छाप कर प्रकाशित करने की प्रतिज्ञा श्रीमती प्रबन्धकर्त्रीसभा वैदिकयन्त्रालय अजमेर ने चारों मूल वेदों के तैयार करने के पश्चात् प्रकट की थी, जो ग्रन्थ इस संसार में सर्वसाधारण को मिलना दुर्लभ था, जिस ग्रन्थ के लिये सैंकड़ों रुपये व्यय किये जाते थे और तिस पर भी दर्शन तक होना दुर्लभ था, जिस ग्रन्थ के लिये सैंकड़ों मनुष्य हमारे पास पत्र भेज २ कर अपने प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन करने की उत्कण्ठा और प्रबल इच्छा प्रकट कर रहे थे, जिस ग्रन्थ के प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट करते ही सैंकड़ों मनुष्यों ने अपना नाम ग्राहकावली में अङ्कित करा लिया था, जिस ग्रन्थ के तैयार होने का शब्द सुनते ही सैंकड़ों मनुष्य पुस्तक मंगाने को पत्र लिख रहे हैं, तथा जिस ग्रन्थ के अवलोकन करने की इच्छा क्या आर्य क्या हिन्दू सभी पण्डितों के हृदयों में उत्पन्न हो रही है। जो ग्रन्थ आज तक आर्यावर्त्त में कहीं नहीं छपा था किन्तु जर्मनी में एक वार मुद्रित हुआ था और जिस का ५०) रुपये मूल्य था, इतने पर भी आज कल ५०) को भी नहीं मिलता, वही "शतपथब्राह्मण" आज छप कर तैयार है। काग़ज़ मोटा सुदृढ़ चिकना एवं श्वेत रायल २४ पौंड का है। टाइप वही जिस में चारों मूल वेद छपे हैं। ऐसे उत्तम टाइप व काग़ज़ होने पर भी सर्वसाधारण के सुभीते के वास्ते मूल्य केवल ४) ही रक्खा है, डाकमहसूल और लगेगा। इस अवसर को हाथ से न जाने दें।

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

दशोपनिषद् मूल

मोटे अक्षरों में चिकने कागज़ पर गुटका साइज़ में बहुत सुन्दर शुद्ध छप कर तैयार हो गये । मूल्य केवल ॥=)

पता—

प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय-अजमेर

और—

स्वामियन्त्रालय-मेरठ

अनाथालय आर्यसमाज अजमेर

की रिपोर्ट १९०२ की मिली । अवकाश की कमी से जितनी हम ने पढ़ी, अधिकारियों का श्रम धन्यवादार्ह और उन्नति पर कार्य पाया गया ॥

३-पञ्चकन्याचरित्र

यह पुस्तक कुछ काल से चुक गया था, अब ग्राहकों के तक़ाज़ों को देख पुनः छपाया है । मूल्य वही)॥ है ॥

द्रौपदीचरित्र नावल (उपन्यास)

इस में स्त्रियों की शिक्षार्थ उत्तम उपदेश है । मूल्य -)॥ मात्र ॥

५-मोहनीमन्त्र

यह भी ऐतिहासिक मनोहर वर्णनपूर्वक स्त्रियों को पतिसेवा ज्ञान-विधायक उत्तम पुस्तक है । मूल्य) ॥

६-सूर्यसिद्धान्त २) व २।)

यह अपूर्व पुस्तक छप गया । इस की भूमिका का परिश्रम जो ग्रन्थ-कर्त्ता भाषानुवादक श्रीयुत बा० उदयनारायणसिंह वर्मा मधुरापुर डाक विद्दूपुर ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर ने किया है;धन्यवाद के योग्य है । भूमिका आ-कार में भी १८ फ़ार्म है । पुस्तक हाथों हाथ जाने योग्य है और जा रही है । विशेष फ़र्वरी के विज्ञापन में देखा होगा । ग्रन्थकार ने प्रथम साधारण काग़ज़ के पुस्तक का १॥) रक्खा था अब २) कर दिया है उत्तम काग़ज़ का मूल्य प्रथम १॥।) था अब २।) कर दिया है । मिलने का पता ऊपर लिखे अनुसार ग्रन्थकार के पास और स्वामियन्त्रालय-मेरठ है ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

७–भजन विलास

रामपुर आर्यसमाजके प्रधानने प्रकाशित किया है। मूल्य अल्प -) मात्र

८–(जगत्) भजनविलास

इस के भजन हमने पढ़े हैं, बड़े रोचक हैं परन्तु कुछ तीक्ष्ण हैं, जो हम को कम रुचते हैं, हम ग्रन्थकार से प्रार्थी हैं कि वे अपनी लेखनी को आगे २ नम्र करेंगे। मूल्य -) मात्र॥

९–भजन चालीसा

इस में ४० भजन हैं। मूल्य -) अधिक है। पता-शङ्करदत्त विद्यार्थी बबियाल (अम्बाला) है॥

* स्वामी जी कृत पुस्तकें

मूल्य घटगया

यजुर्वेद भाष्य १६) सत्यार्थप्रकाश १॥) बढ़िया काग़ज़ का २) संस्कारविधि ॥) निरुक्त ॥=) वर्णोच्चारणशिक्षा)॥। आर्याभिविनय ≡) आर्यसमाज के नियमोपनियम)। हवनमन्त्र)। आर्योद्देश्यरत्नमाला)। पञ्चमहायज्ञविधि -)॥ भूमिका १।) उणादिकोष ॥) व्यवहारभानु =) अन्य नवीन-शतपथब्राह्मण मूल ४) दशोपनिषद् मूल ॥=)

चारों वेद मूल संहिता सुन्दर सस्वर मुम्बई के टैप में शुद्ध छपे हुवे देवता ऋषि छन्द और स्वर की सूचनायुक्त हैं। मूल्य घटिया काग़ज़ ५ बढ़िया ५।) जिल्द बंधी चाहें तो दोनों प्रकार कों पर १) अधिक। डाक०॥।)

ऊपर के पुस्तकों में नं० ९ को छोड़ कर अन्य सब स्वामियन्त्रालय-मेरठ से मिलेंगे॥

प्रेरित पत्रों के प्रति

निवेदन है कि लाला सीताराम देववन्द्य, श्रोत्रिय शङ्करलाल जी बिजनौर, मन्त्री आर्यसमाज कोटा, राममनोहरस्वामी आदापुर, आ० स० देवरिया, गोपालराम जी दातागञ्ज, केवलकृष्ण वर्मा जी रबूपुरा, जयकुमारलाल बगहा के भेजे समाचारों को देरी और अनवकाश के कारण नहीं छाप सके प्रेरक महाशय क्षमा करें॥ संपादक

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

ओ३म्

हैद्राबाद दक्षिण
के
यज्ञ में पशुवध विषयक शास्त्रार्थ का
परिणाम

पाठकों को ज्ञात है कि श्रीयुत अच्युताश्रम स्वामी जी ने एक वर्ष से टालते २ अन्त में ता० २४ एप्रिल १९०३ नियत की थी। तदनुसार ता० १७ एप्रिल को श्रीयुत पं० आर्यमुनि जी १९ को श्रीयुत पं० पूर्णानन्द जी २२ को तुलसीरामस्वामी और २३ को श्रीयुत पं० रुद्रदत्त जी हैदराबाद पहुंच गये थे॥

ता० २२ को आर्यसमाज की ओर से नीचे लिखे शास्त्रार्थ के नियम सनातनी पक्षस्थ श्रीमान् स्वामी अच्युताश्रम जी आदि के समीप भेजेगये यथाः-

शास्त्रार्थ का विषय-

श्री अच्युत स्वामी जी का पक्ष-यज्ञ में पशुवध वेदप्रतिपाद्य है। आर्यसमाज का पक्ष-यज्ञ में पशुवध वेदविरुद्ध है॥

इस शास्त्रार्थ के नियम निम्न लिखित होंगे॥

१-दोनों ओर से एक सभापति होना चाहिये जिसका काम निम्न लिखित नियमों पर चलाना और शास्त्रार्थ को उभय पक्ष के द्रव्य से छपवाना होगा नकि किसी को विजय पराजय का प्रशंसा पत्र देना। इस लेखबद्ध शास्त्रार्थ का परिणाम पाठक लोग स्वयं पढ़कर निकाल लेंगे॥

२-शास्त्रार्थ लेखबद्ध और मौखिक दोनों प्रकार से होगा। अर्थात् उभय पक्ष की ओर से निर्णीत पुरुष प्रथम स्वयं स्वपक्ष को लिखेगा, हस्ताक्षर करेगा और सुनावेगा। उस की प्रति प्रतिवादी को देगा॥

३-समय शास्त्रार्थ का उभय पक्ष के वक्ताओं को १५।१५ मिनट दिये जायंगे। इस प्रकार छः छः वार वादी प्रतिवादी को दिया जायगा। अनन्तर एक विषय समाप्त समझा जायगा॥

४-विधि वाले वक्ता को उपक्रम करना होगा और निषेधवादी को उपसंहार।

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

५—शास्त्रार्थ में कोई पुरुष अपशब्द का प्रयोग नहीं कर सकेगा। यदि कोई ऐसा करेगा तो प्रधान को अधिकार होगा कि उस विषयसे उसे प्रथम रोक दे, यदि फिर भी वह नियम भङ्ग करे तो उस पुरुष को बाहर निकाल दिया जायगा॥

६—शास्त्रार्थ में मुख्य प्रमाण वेदसंहिता के दिये जायंगे परन्तु पुष्टि के लिये अन्य ग्रन्थों के भी प्रमाण दिये जायंगे॥

७—शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में लिखा जायगा परन्तु तात्कालिक अनुवाद हिन्दी भाषा में होगा॥

इन नियमों का उत्तर ३ दिन में ता० २४।४।१३ को जो शास्त्रार्थकी तिथि महीनों पूर्व से नियत थी, दो पहर पीछे यह आया कि:—

ओम्

सनातनधर्म पर पशुवध विषयक आर्यसमाज का आक्षेप और आक्षेप का समय वा शास्त्रार्थ के नियम॥

श्रीयुत वासुदेव नायक जी ने कृष्णातट पर याग किया था याग में श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान् अच्युताश्रम स्वामी जी सहित कई सौ विद्वान् उपस्थित थे उसी वक्त आर्यसमाज ने बेजावड़े आकर अनेक नोटिस बांटकर प्रसिद्ध कर दिया था कि याग में पशुवध करना शास्त्रविरुद्ध और अनुचित है॥

इस के बाद स्वामी जी के नाम से शास्त्रार्थ करने लिये आर्यसमाज ने ३ पत्र भेजे शास्त्रार्थ करो। स्वामी जी ने पत्रों का उत्तर न दिया॥

आर्यसमाज ने फिर पत्र लिखा कि शास्त्रार्थ करो और पत्र का उत्तर दो नहीं तो हम इस विषय को समाचार पत्र में छपाते हैं। स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और पत्र का उत्तर दिया तथा शास्त्रार्थ करने के लिये नियम वा तिथि वगैरा ठहराने की लिखपढ़ी वा परस्पर बात चीत चली परन्तु देहली दरबार की धूम धाम की तर्फ़ से उस वक्त तिथि नियत न हो सकी किन्तु स्वामी जी ने सिकन्दराबाद सेठ बनसीलाल अबीर चन्द जी के बाग़ में ठहरे हुए शङ्कर हरिहर तीर्थ के द्वारा पत्र लिखवाकर चैत्र कृष्णा १२ अर्थात् तारीख़ २४ अप्रैल नियत करवादी यह समय का सामान्य क्रम है॥

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

नियम—

सनातनधर्म और आर्यसमाज की तर्फ़ से वेद वेदाङ्ग व उपाङ्ग दर्शन ग्रन्थार्थवेत्ता फैसला करने वाला व बन्दोबस्त करने वाला योग्य सदाचार संपन्न मध्यस्थ होना चाहिये ॥

यदि वेदवेदाङ्ग जानने वाला न मिल सके तो धार्मिक बुद्धिमान पक्षपात शून्य योग्य नगर के किसी एक कर्मचारी को दो कर्मचारी वा पांच अथवा दश व्यक्तियों वा पचीस कर्मचारी तथा पढे लिखे धार्मिक धनाढ्य व्यक्तियों पर फैसले का भार सौंपाजावे। अथवा सौ दोसौ पांच सौ वा हज़ार या आम लोगों पर इस फैसले का भार माना जावे और एक दो व्यक्ति दोनों पक्षों का उचित अनुवाद करके सुनादेवें कि दोनों पक्ष वालों का यह कथन है। आप लोगों को इन दो पक्षों में किस का कथन सच्चा उचित योग्य यथार्थ हो आप लोग उस पर अपनी धार्मिक सम्मति देदीजिये ॥

शास्त्रार्थ में वेद वेदाङ्ग वा उपाङ्ग अर्थात् दर्शन ग्रन्थ और उन पर प्राचीन महाभाष्यादि संख्या पूर्वक ग्रन्थों का प्रमाण दिया जावे और वे ग्रन्थ सर्वथा और समग्र तथा सदैव प्रमाण माने जावे क्योंकि वेद अपने अङ्ग उपाङ्गों बिना नहीं लग सकता है। अथवा केवल वेद मात्र माना जावे ॥

शास्त्रार्थ संस्कृत प्राकृत दोनों में होवे जिस को इच्छा हो कि मैं संस्कृत में भाषण करूंगा वह संस्कृत, प्राकृत की इच्छा वाला प्राकृत में शास्त्रार्थ करे दोनों तर्फ़ के विद्वानों की गणना होकर उन्हीं के नाम लिखे जावे ॥

कौन विद्वान् पहले अथवा पीछे शास्त्रार्थ संस्कृत अथवा प्राकृत में करेगा यह बात अपने २ पक्ष में विचार लेवें और आक्षेप कर्त्ता भाषण जिस भाषा में स्वीकार करे उसी भाषा में आरम्भ होना चाहिये ॥

पहले दोनों तर्फ़ के जब दो विद्वान् शास्त्रार्थ शुरू करें उन्हीं को दोनों तर्फ़ के विद्वान् अपने २ पक्ष के विद्वान् को सम्बोधित करके अपना तात्पर्य समझा देवे अर्थात् सहाय कर्त्ता रहें परन्तु दूसरे पक्ष के विद्वान् से वे भाषण न कर सकेंगे ॥

जब दोनों शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों में से एक शिथल या निरुत्तर हो जावे उस वक्त पूर्वोक्त कोई प्रकार का मध्यस्थ शिथल पक्ष वाले मुखिया को पूछे अर्थात् आप इस के निरुत्तर से निरुत्तर हैं या दूसरा विद्वान् स्थापित करना चाहते हैं स्थापित करदेवें वा निरुत्तर समुझ लेवें ॥

समय जिस को जितना लगे उतना प्रश्नोत्तर के लिये देता जावे परन्तु

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

आधे घंटे से अधिक समय किसी को न दिया जावे व वितण्डा वाद के लिये भी मध्यस्थ समय अधिक न देवे व बिलकुल न देवे। यदि मध्यस्थ चाहे वा आमलोग चाहें तो शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो सकेगा नहीं तो मौखिक अच्छा होगा।

शास्त्रार्थ में कोई भी पुरुष मर्मभेदी व अयोग्यशब्द न बोल सकेगा कदाचित् कोई बोलेगा तो एक दफ़ा मना कर मध्यस्थ दूसरी दफ़ा उचित रीति से उस को बन्द कर दूर करा देवेगा।

गवर्नमेंट की नीति के ख़िलाफ़ कोई पक्षपात वगैरा नहीं कर सकेगा।

शास्त्रार्थ छापने वगैरा की यदि ज़रूरत होवे तो न्यायानुसार आक्षेप कर्त्ता का काम अथवा जिस का पक्ष गिरजावे वह छपवावे।

नियम पास होने पर इनसे दोनों पक्ष वालोंके हस्ताक्षर करा लेना चाहिये।

मध्यस्थ का स्वीकार न करने वाला पक्ष शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता है ऐसा समुझा जावेगा। और कहा जावेगा कि यह केवल वितण्डा कर लोगों को दुःख देना चाहता है तथा व्यर्थ सताता है।

यह भी कहना योग्य न होगा कि यहां कोई मध्यस्थ के योग्य नहीं है। क्योंकि ब्रिटिशगवर्नमेंट व निज़ाम सरकार के कर्मचारी व वकील बेरिस्टर वगैरह साक्षात् संस्कृत व उर्दू फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी में अनुवादित वैदिक प्रभृति ग्रन्थों को देख सुन कर हमेशा अदालतों में फ़ैसला किया सुना करते हैं।

समय शास्त्रार्थ का ८ बजेरात से ११ ग्यारा बजे राततक होगा।

एक विषय ८ आठरोज़ तक चल सकेगा आगे नहीं। ८ रोज़ का एक विष का समय समझा जावेगा।

इस के साथ एक पत्र भी था कि:—

ओ३म्

केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आप को विदित हो कि आप के पास नियम भेजता हूं। आप लेकर शास्त्रार्थ का नियत तिथि पर पूरा २ बन्दोबस्त कीजिये समय व्यर्थ नहीं खराब करियेगा। ता० २३ छपा हुवा नोटिस भी देखचुकेहो अगर कुछ आगे पीछे हो तो इत्तला दीजियेगा। ता० २४। ४। १९०३ शङ्कर हरिहर तीर्थ॥

ता० २४ को ही इस का उत्तर समाज ने तत्काल दिया कि—

श्रीयुत अच्युत स्वामी जी नमस्ते!

आज स्वामी शंकर हरिहर तीर्थ जी ने तीन दिन पश्चात् शास्त्रार्थ के नियमों में परिवर्त्तन करके निजकृत नियम भेजे हैं। जिन में अन्य बातों

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

तो कोई विवाद की नहीं है और जो अनावश्यक उपोद्घात लिखा है उस से भी हम लोगों को कुछ प्रयोजन नहीं है किन्तु शास्त्रार्थ का मध्यस्थ होना जो आवश्यक लिखा है सो तटस्थ पुरुष मध्यस्थ मिलना बहुत कठिन है। इसलिये हमारे लिखे नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ आज से ही आरम्भ कीजिये तो हम लोगों का श्रम और हमारे पण्डितों का आगमन सफल होजावे। मध्यस्थ की विचारणा करनी थी तो पूर्व मे करनी थी, अब शास्त्रार्थ की नियत तिथि पर भी पूर्वाह्न व्यतीत करके अपराह्न में मध्यस्थ की आवश्यकता लिखना शास्त्रार्थ में विघ्नकारक होगा। विगत वर्ष महाराज टिहरी नरेश के समक्ष भी शास्त्रार्थ के लिये मध्यस्थ नहीं मिला और अन्त को यही स्थिर हुआ था कि लेख प्रतिलेख एकत्र करके छापदिये जावेंगे। और पढ़ने वाला फल समझ लेगा। ऐसा ही आगरा आदि में हुआ और यहां भी ऐसा ही होना चाहिये। ऐसा ही आप ने भी पूर्व स्वीकार किया था कि प्रबन्धकर्त्ता केवल शान्तिरक्षक होगा, निर्णेता नहीं। इस पर भी यदि पूर्व प्रतिज्ञा को त्याग कर अब आप को मध्यस्थ का आग्रह विशेष हो तो हैद्राबाद में रहने वाले किसी ऐसे मध्यस्थयोग्यतासंपन्न पुरुष को हम नहीं जानते हैं, किन्तु पं० गङ्गाप्रसाद एम० ए० डिपुटी कलक्टर गढ़वाल, वा पं० विष्णुलाल एम० ए० मुंसिफ़ मुज़फ़्फ़रनगर के पास लेख प्रतिलेख भेजकर फ़ैसला करालें। स्थानिक संभावित पुरुष राजा ज्ञानगिरि जी को प्रबन्धकर्त्तामात्र नियत करलें (फ़ैसला करने वाला नहीं) और शास्त्रार्थ आरम्भ करदें। यदि उक्त दो पुरुष स्वीकृत नहीं हों तो आप किन्हीं का नाम बतावें और हम यह विचारें कि वह पुरुष वेद वेदाङ्ग ज्ञानसंपन्न है कि नहीं और एकपक्ष का पक्षपाती है कि तटस्थ।

२—हमारे दूसरे नियमानुसार निजपक्ष को नियत समय में लिख कर हस्ताक्षर करके परपक्ष को देते जाना अवश्य स्वीकृत कीजिये। इस नियम को स्वीकार नहीं करेगा वही पक्ष शास्त्रार्थ का अनिच्छुक समझा जावेगा॥

३व४—नियम पर शंकर हरिहर तीर्थ जी ने स्वीकृत वा अस्वीकृत कुछ भी नहीं किया सो करना चाहिये॥

६—षष्ठ नियमानुसार वेदादि का प्रमाण स्वीकृत करना चाहिये॥

७—संस्कृत में शास्त्रार्थ लिखना और हिन्दी में अनुवाद सुनाना नियत होना चाहिये। क्योंकि देशभेद से संस्कृताऽतिरिक्त भाषा को पूर्णतया पक्ष प्रतिपक्ष वाले कदाचित न समझें॥

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

आधे घंटे से अधिक समय किसी को न दिया जावे व वितण्डा वाद के लिये भी मध्यस्थ समय अधिक न देवे व बिलकुल न देवे। यदि मध्यस्थ चाहें वा आमलोग चाहें तो शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो सकेगा नहीं तो मौखिक अच्छा होगा।

शास्त्रार्थ में कोई भी पुरुष मर्मभेदी व अयोग्यशब्द न बोल सकेगा कदाचित् कोई बोलेगा तो एक दफा मना कर मध्यस्थ दूसरी दफा उचित रीति से उस को बन्द कर दूर करा देवेगा।

गवर्नमेंट की नीति के ख़िलाफ़ कोई पक्षपात वगेरा नहीं कर सकेगा।

शास्त्रार्थ छापने वगेरा की यदि ज़रूरत होवे तो न्यायानुसार आक्षेप कर्त्ता का काम अथवा जिस का पक्ष गिरजावे वह छपवावे।

नियम पास होने पर उनसे दोनों पक्ष वालोंके हस्ताक्षर करा लेनाचाहिये।

मध्यस्थ का स्वीकार न करने वाला पक्ष शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता है ऐसा समझा जावेगा। और कहा जावेगा कि यह केवल वितण्डा कर लोगों को दुःख देना चाहता है तथा व्यर्थ सताता है।

यह भी कहना योग्य न होगा कि यहां कोई मध्यस्थ के योग्य नहींहै। क्योंकि ब्रिटिशगवर्नमेंट व निज़ाम सरकार के कर्मचारी व वकील बेरिस्टर वगेरह साक्षात् संस्कृत व उर्दू फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी में अनुवादित वैदिक प्रभृति ग्रन्थों को देख सुन कर हमेशा अदालतों में फैसला किया सुना करते हैं।

समय शास्त्रार्थ का ८ बजेरात से ११ ग्यारा बजे राततक होगा।

एक विषय ८ आठरोज़ तक चल सकेगा आगे नहीं। ८ रोज़ का एक विषय का समय समझा जावेगा।

इस के साथ एक पत्र भी था कि:—

ओ३म्

केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आप को विदित हो कि आप के पास नियम भेजता हूं। आप लेकर शास्त्रार्थ का नियत तिथि पर पूरा २ बन्दोबस्त कीजिये समय व्यर्थ नहीं खराब करियेगा। ता० २३ छपा हुवा नोटिस भी देचुके हो अगर कुछ आगे पीछे हो तो इत्तला दीजियेगा। ता० २४। ४। १९०३ शङ्कर हरिहर तीर्थ॥

ता० २४ को ही इस का उत्तर समाज ने तत्काल दिया कि—

श्रीयुत अच्युत स्वामी जी नमस्ते!

आज स्वामी शंकर हरिहर तीर्थ जी ने तीन दिन पश्चात् शास्त्रार्थ के नियमों में परिवर्तन करके निजकृत नियम भेजे हैं। जिन में अन्य बातों

SGDF Sri Gurugobind Digital Foundation

तो कोई विवाद की नहीं है और जो अनावश्यक उपोद्घात लिखा है उस से भी हम लोगों को कुछ प्रयोजन नहीं है किन्तु शास्त्रार्थ का मध्यस्थ होना जो आवश्यक लिखा है सो तटस्थ पुरुष मध्यस्थ मिलना बहुत कठिन है। इसलिये हमारे लिखे नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ आज से ही आरम्भ कीजिये तो हम लोगों का श्रम और हमारे पण्डितों का आगमन सफल होजावे। मध्यस्थ की विचारणा करनी थी तो पूर्व में करनी थी, अब शास्त्रार्थ की नियत तिथि पर भी पूर्वाह्ण व्यतीत करके अपराह्ण में मध्यस्थ की आवश्यकता लिखना शास्त्रार्थ में विघ्नकारक होगा। विगत वर्ष महाराज टिहरी नरेश के समक्ष भी शास्त्रार्थ के लिये मध्यस्थ नहीं मिला और अन्त को यही स्थिर हुआ था कि लेख प्रतिलेख एकत्र करके छापदिये जावेंगे। और पढ़ने वाला फल समझ लेगा। ऐसा ही आगरा आदि में हुआ और यहां भी ऐसा ही होना चाहिये। ऐसा ही आप ने भी पूर्व स्वीकार किया था कि प्रबन्धकर्त्ता केवल शान्तिरक्षक होगा, निर्णेता नहीं। इस पर भी यदि पूर्व प्रतिज्ञा को त्याग कर अब आप को मध्यस्थ का आग्रह विशेष हो तो हैदराबाद में रहने वाले किसी ऐसे मध्यस्थयोग्यतासंपन्न पुरुष को हम नहीं जानते हैं, किन्तु पं० गङ्गाप्रसाद एम० ए० डिपुटी कलक्टर गढ़वाल, वा पं० विष्णुलाल एम० ए० मुंसिफ़ मुज़फ़्फ़रनगर के पास लेख प्रतिलेख भेजकर फ़ैसला करालें। स्थानिक संभावित पुरुष राजा ज्ञानगिरि जी को प्रबन्धकर्त्तामात्र नियत करलें (फ़ैसला करने वाला नहीं) और शास्त्रार्थ आरम्भ करदें। यदि उक्त दो पुरुष स्वीकृत नहीं हों तो आप किन्हीं का नाम बतावें और हम यह विचारें कि वह पुरुष वेद वेदाङ्ग ज्ञानसंपन्न है कि नहीं और एकपक्ष का पक्षपाती है कि तटस्थ।

२—हमारे दूसरे नियमानुसार निजपक्ष को नियत समय में लिख कर हस्ताक्षर करके परपक्ष को देते जाना अवश्य स्वीकृत कीजिये। इस नियम को स्वीकार नहीं करेगा वही पक्ष शास्त्रार्थ का अनिच्छुक समझा जावेगा॥

३व४—नियम पर शंकर हरिहर तीर्थ जी ने स्वीकृत वा अस्वीकृत कुछ भी नहीं किया सो करना चाहिये॥

६—षष्ठ नियमानुसार वेदादि का प्रमाण स्वीकृत करना चाहिये॥

७—संस्कृत में शास्त्रार्थ लिखना और हिन्दी में अनुवाद सुनाना नियमित होना चाहिये। क्योंकि देशभेद से संस्कृताऽतिरिक्त भाषा को पूर्णतया पक्ष प्रतिपक्ष वाले कदाचित न समझें॥

SGDF Sri Gurgeshwari Digital Foundation

अन्य आप जो उचित समझें सो लिखें, हम उस पर विचार करके संमति देंगे। समग्र ग्रन्थों का प्रमाण सर्वथा सर्वदा के लिये करना न करना नहीं बनसका किन्तु वेद स्वतःप्रमाण और उन से अविरुद्ध अन्य ग्रन्थ भी हम मानते हैं जैसा कि पूर्वाचार्य मानते आये हैं॥

केशवराव

इस पर ता० २५ भी व्यतीत होगई और कोई उत्तर नहीं आया तथा शङ्करहरिहर तीर्थ जी ने क्रोध के अतिरिक्त कोई काम न किया। हां, मान्यवर गोस्वामी श्री नरसिंहगिरि जी ने आर्य पण्डितों को बुलाकर समागम किया और पूछा कि शास्त्रार्थ में क्या अवरोध है, पण्डितों ने उत्तर दिया कि मध्यस्थ की अनहोनी सी शर्त्त ही शास्त्रार्थ में बाधक है, आप ऐसा यत्न करें कि शास्त्रार्थ होजावे। मान्यवर ने फ़रमाया कि हां मैं उस पक्ष का अभिप्राय जानने का उद्योग करूंगा। इत्यादि॥

आर्यसमाज की ओर से तुलसीराम स्वामी का व्याख्यान वैदिकधर्म और मतभेद पर ता० २४ को हुआ, जिस में मान्यवर बख़्शीरघुनाथप्रसाद साहब जज हाईकोर्ट इत्यादि माननीय पुरुषों सहित १००० से अधिक जन संख्या थी। व्याख्यानान्त में शास्त्रार्थ का पत्र व्यवहार सुनाया गया और पबलिक को सुझाया गया कि पौराणिक पक्ष मध्यस्थ की ओट से शास्त्रार्थ से बचना चाहता है। हम लोग दूर देश से आये हैं, आप लोग यत्न करें कि शास्त्रार्थ अवश्य होजावे। इत्यादि॥

दूसरे दिन पं० आर्यमुनि जी का "व्याख्यान वर्णाश्रम धर्मोद्धार पर आर्यसमाज का प्रयत्न" विषय पर प्रभावजनक हुवा। पं० काशीनाथ वामन लेले जो पूना से आये थे, वर्णव्यवस्थादि पर व्याख्यान तो मरहठी में देते रहे परन्तु संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इन्कार करते रहे, जिन के पाण्डित्य का हम लोगों को भी बड़ा भरोसा था। उन्होंने यह भी कहा कि मैं तो अच्युतस्वामी जी व आर्यसमाज के शास्त्रार्थ को देखने आया हूं। शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूं और (मध्यस्थादि स्थिर होजाने पर) शास्त्रार्थ करना भी पड़े तो संस्कृत में भाषण न करूंगा। इत्यादि॥

आज ही ता० २५ की रात्रि को ८॥ बजे फिर टालमटोल का दूसरा पत्र निम्नलिखित आया कि:— ओ३म्

श्रीयुत प्रधान आर्यसमाज हैदराबाद महाशय केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के पश्चात् आप को सम्यग् विदित हो कि आप का पांच

SGDF Sri Gangadhar... Foundation

नकुआरीपत्र कल ता० २४ अप्रैल का लिखा हुआ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान् अच्युताश्रम स्वामी जी महाराज के नाम पर गआ हुआ स्वामी जी महाराज के द्वारा कल छः बजे के क़रीब आप के समक्ष मुझे मिला—

मैं आप से निवेदन करता हूं कि जब पत्र प्रभृति व्यवहार का भार स्वामी जी ने मेरे ऊपर रक्खा है कि जिस को आप अच्छी तरह जानते हैं और मेरे साथ व्यवहार आप का चल रहा है मेरे द्वारा शास्त्रार्थ की तिथि का पत्र आप के पास मौजूद है फिर न मालूम आपने व्यवहार का पत्र मेरे पास न भेज कर स्वामी जी महाराज को क्यों तकलीफ़ दी—अस्तु

इस ५ नम्बर के पत्र में आपने लिखा है कि शङ्कर हरिहर तीर्थ ने तीन दिन के बाद शास्त्रार्थ के नियमों में परिवर्तन करके निज कृत नियम भेजे हैं जिन में अन्यवार्ता तो कोई विवाद की नहीं है परन्तु जो अनावश्यक उपोद्घात लिखा है उस से भी हम लोगों को कुछ प्रयोजन नहीं है॥

महाशय आप वकील हैं मैं एक साधारण आप का संन्यासी हूं। मैं आप के इस लेख से संतुष्ट हुआ हूं कि (अन्यवार्ता तो कोई विवाद की नहीं है) तथा उपोद्घात का आपको चाय कोई प्रयजन हो परन्तु हम को है और कल आपके व्याख्यान में व्याख्यानदाता महोदय को भी उपोद्घात की जरूरत पड़ी थी और शायद आगे भी पड़ेगी शायद आप को स्मरण होगा कि मैंने आप से ही पूछा था कि आप कहिये विवाद का मूल क्या है मैं नियमों के आदि में लिखूंगा परमेश्वर जाने यह बात आप को क्यों भूल गई आप लिडर हैं और तीन दिन के बाद नियमों में परिवर्तन कर निजकृत नियम भेजे हैं यह आप का लेख कैसा ही क्यों न हो किन्तु भाई साहेब यह एक इस वक्त विवादास्पद महानकार्य है इस के बाबत जब तक नियम वग़ैरह रीति से ठीक न कर लिये जावें उन के बिना यह कार्य समुझदार लोगों को आदरणीय न होगा॥

आप ने लिखा कि तटस्थ मध्यस्थ मिलना बहुत कठिन है लेकिन बहुत कठिन बतला कर भी श्रीमान् पण्डित गङ्गाप्रसाद एम० ए० एम० ए० मुन्सिफ़ विष्णुलाल जी को मध्यस्थ मान कर लेख भेजने को लिखा है हम उन्हीं से अपरिचित हैं लेकिन श्रीमान् निजामहोदय के प्रधान मन्त्री महाराजा कृष्ण प्रसाद बहादुर वा श्रीमान् राजा रायराय श्रीमान् शिवराजा बहादुर श्रीमान् राजामुरलीमनोहर बहादुर श्रीमान्

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

रावारम्भा श्रीमान् राजा बहादुर शानगिरीनरसिंहगिरी जी श्रीमान् सेठ मोतीलाल जी अंगरेज़ी सरकार के मान्य परमपात्र उत्तम न्यायीजोशी साहेब वा डाक्टर अघोरनाथ जी षट्कोपाचार्य जी एम० ए० वा राजाबहादुर विश्वेश्वरगिरि जी बेरिस्टर रंगयियानायडु वगैरह साहबों से आप अपरिचित नहीं हैं ये सब साहब अनेक अंशों में भद्र और प्रतिष्ठित पुरुष हैं कदाचित् आप पक्षपात वा टालाटूली कर जावें यह दूसरी बात है इन मान्यवर पुरुषों में से चुनिये और प्रयत्न कीजिये और उन्होंसे हाँ भरा कर मध्यस्थ बना अपने और हमारे विद्वानों का परिश्रम दूर कीजिये यह आप का कर्त्तव्य है झगड़े के मूल पत्रव्यवहारादि में कारण आपही हैं॥

आप ने लिखा कि मध्यस्थ की आवश्यकता लिखना शास्त्रार्थ में विघ्न कारक होगी सो उलटी बात है किन्तु मध्यस्थ की आवश्यकता विघ्न निवारक है बिना मध्यस्थ के आर्यसमाज और दूसरे लोग झगड़ा कर बड़े घर (कारागार) की हवा खाचुके हैं यदि आप के यहां समाचार पत्रों की मसली हो तो उठा के देख लीजिये॥

और टिहरी के उदाहर देना आप को आप की पक्ष पूर्ति का साधन होगा, हम को दृष्टान्तों की ज़रूरत नहीं है, हम को आप की बात चीत पर आश्चर्य होता है कि जब विषय का समझने वाला कोई पुरुष निर्णय करने को समर्थ नहीं है फिर सर्वसाधारण स्वयं समझ लेवेंगे, यह वदतो व्याघात है। आप ने स्वामी जी को लिखा कि आप ने भी मध्यस्थ न होने का स्वीकार पहले कर लिया था, यह आप की विकालत है। मेरे साथ भी विकालत आप कर चुके हैं। स्वामी जी ने आप के समक्ष कह दिया था कि मध्यस्थ का होना हम को स्वीकार था और है तथा रहेगा। मध्यस्थ बिना योग्यपुरुषों के नियमित व्यवहार निरर्थक होते हैं, आप को स्मरण रखना चाहिये॥

आप को हस्ताक्षर वग़ैरह की बात हम अवश्य मान लेवेंगे, किन्तु मध्यस्थ की व्यवस्था उस में कारण है नहीं तो बालकों के सा यह शास्त्रार्थ तमाशा हो जावेगा। इस से दोनों पक्षों की क्षति होगी। शास्त्रार्थ का अमरछु वही हो सकता है जो व्यवस्था की सामग्री जोड़ने में आना कानी करता हो। शास्त्रार्थ संस्कृत में हो वा भाषा में हम को अनिष्ट नहीं है हम अपने लेख में लिख चुके हैं आप उठाकर फिर भी एक दफ़ा देख लीजिये।

Sri Gargeshwari Digital Foundation

प्रमाणोंके बाबत भी लिख चुके हैं पिष्टपेषण करना न चाहिये आप को और भी जो कुछ विचार करना हो कर लीजिये जिस से आप के विद्वानों का आना सफल हो, आपके पत्र का उत्तर क्रमाङ्क पूर्वक समालोचना कर लिखा सो मुझे इष्ट या माफ़ कीजियेगा ॥

शङ्कर हरिहर तीर्थ

इस का उत्तर समाज ने उसी रात्रि को ११॥ बजे यह दिया कि:-

ओ३म्

श्री शङ्कर हरिहर तीर्थ स्वामी जी ! नमस्ते

कल के पत्र का उत्तर आज ८॥ बजे सायं आया । आप इतनी देर में उत्तर देते हैं यह भी तो शास्त्रार्थ का समय व्यर्थ खोने की बात है वा नहीं?

आपने नियम देते समय स्वयं कहा था कि श्री अच्युत स्वामी जी के समक्ष जाकर स्थिर कर लें, उसी अभिप्राय से हम ने उनके नाम उत्तर भेज दिया । जो पत्र पढ़ने में उन्हें तकलीफ़ हुई सो वे क्षमा करें । तीन दिन में उत्तर देना शास्त्रार्थ को टालना नहीं तो क्या है ? मध्यस्थ के विषयमें श्रीमान् स्वामी अच्युताश्रम जी का कथन तो आज यह था कि मध्यस्थ न्यायशास्त्रानुसार निग्रहादि का जानने वाला विद्वान् हो सकता है और आप उन के प्रतिनिधि होकर भी ऐसे पुरुषों के नाम क्यों लिखते हैं जो कि सांसारिक प्रतिष्ठा में परम उच्च संभावित हैं तथापि १-गौतमीय न्याय-शास्त्रादि के मर्मज्ञ होने का स्वयं भी दावा करें, ऐसी आशा नहीं । २-आप के सनातन धर्म कहाने वाले मत के अनुयायी होने से एक पक्ष के अन्तर्गत हैं । ३-एक पुरुष वेद को अपौरुषेय धर्मग्रन्थ ही नहीं मानते हैं किन्तु आर्यसमाज से भी बहुत दूरस्थ ब्राह्मसमाजी हैं, और वेद को जैसा आप वा हम मानते हैं, वे नहीं मानते । मध्यस्थ विघ्ननिवारक इतने से भी हो सकता है कि वह प्रबन्धकर्त्ता मात्र हो, फ़ैसला देने वाला न हो । सर्वसाधारण पढ़ने वाले अपने लिये निर्णय करने को पर्याप्त हैं किन्तु एक पुरुष अनेकों सहस्रों मनुष्योंके लिये निर्णय करने को पर्याप्त हो, ऐसा होना कठिन है । श्री अच्युताश्रम स्वामी जी के कथनानुसार वादी वा प्रतिवादी को मध्यस्थ की परीक्षा का अधिकार देना क्या युक्त है ? संभव है कि एक दूसरे को अल्पज्ञ बतावें और विवाद एक नया खड़ा होजावे ॥

आप समाचार पत्रों से क्या किन्तु कहीं भी एक भी दृष्टान्त इस बात

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

क्या नहीं देखसकते कि किसी शास्त्रार्थ में मध्यस्थ न होने से कहां कौन बड़े घर कारागार की हवा खाचुका है। टिहरी नरेश से माननीय राजा साहब का दृष्टान्त यदि हमारा पक्षपोषक है तो क्या आप के लिखाये नाम आपके पक्षपोषक होंगे, यह कहना अनुचित होगा? मध्यस्थ के बिना महाराज टिहरी नरेश के समक्ष हुवे शास्त्रार्थ की रीति पर होने वाले शास्त्रार्थ को बालक्रीडा बताना आप का साहस है। प्रमाणों की बाबत आप का लिखना हमारे संमत नहीं, आप को हमारा लेख संमत न हो तब उस का पुनर्लेख पिष्टपेषण क्यों हुवा? अब कहिये कि हमारे २२।४।३ को भेजे ७ नियमों में आप को क्या और क्यों अस्वीकृत है? वा सब स्वीकृत हैं? वा नहीं। पत्र व्यवहार झगड़े का मूल नहीं, किन्तु झगड़ा न हो इस के लिये बन्धन है। देखिये कृपया शीघ्र उत्तर दें॥

२५।४।३ ११॥ बजे रात्रि को

उत्तर आया कि:— केशवराव

१—श्रीयुत प्रधान आर्य्यसमाज हैदराबाद महाशय केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आप को विदित हो कि कल ता० २५ अप्रेल को रात्रि के ११॥ बजे भवानी शङ्कर जी के द्वारा पत्र नम्बर एक आप का मिला तिस की समालोचना करके निवेदन करता हूं—

२—महाशय आप ने लिखा कि आज ८॥ बजे रात को उत्तर आया, आप इतनी देर में उत्तर देते हैं यह भी तो शास्त्रार्थ का समय व्यर्थ खोने की बात है वा नहीं?

३—केशवराव जी आप को सोचना चाहिये कि मैं प्रातःकाल से लेकर १२ बजे तक तो मेरे अनुष्ठान में लगा रहता हूं, बाद उस के भोजन आदि में समय चला जाता है। २—२॥ बजे के बाद आप की तर्फ़ से लगाई हुई झगड़े की पञ्चायत की लिखा पढ़ी के उत्तर वग़ैरह देने में प्रवृत्त होता हूं। और यदि आप का शास्त्रार्थ और शास्त्रार्थ का समय इतना नाज़ुक है कि १२ वा १४ घंटों में व्यर्थ चला वा बहा जाताहै तो आप ने इतना साहस क्यों किया। जब आप एक कट्टर देशहितैषी हैं। आप ने अपना तन मन धन अपने सिद्धान्त के अनुसार देशोन्नति के लिये अर्पण किया है। फिर ना मालूम आप क्यों घबराते हैं और एक ग़रीब संन्यासी के शिर पर जबर-

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

दस्ती कलङ्क लगाकर निकल जाना चाहते हैं। भाई यदि शास्त्रार्थ का
पूरा २ दावा रखते हो तो घबराये नहीं शान्ति से कार्य कीजिये कोई किसी
का ताबेदार नहीं है लिखा पढ़ी रीति से हुआ करती है, हम लोग तो शा-
न्तिपूर्वक काम करना अच्छा समझते हैं, आप को कदाचित् इतनी जल्दी
थी तो काम सोच विचार के साथ करना था, काम छेड़ कर पुनः व्याकुल
होना आप को उचित नहीं है ऐसे धर्मकार्य में शरीर पात पर्यन्त वा ज-
न्मान्तर का भी दावा रखना सज्जन देशहितैषियों का प्रधान कर्त्तव्य है और
इसी लिये शायद समाज ने आप को प्रधान बनाया है ॥

४–स्वामी जी महाराज को तकलीफ़ देने की बाबत आप ने स्वामी
जी से क्षमा प्रार्थना की, इस लिये मैं आप को धन्यवाद देता हूं ॥

५–आप ने लिखा, कि तीन दिन के बाद उत्तर देना शास्त्रार्थ को टालना
नहीं तो क्या है, इस के बाबत इस पत्र में लिख चुका हूं कि शास्त्रार्थ चला
वा बढ़ाजाता है क्या सो देखलो एक बात को सौ जगह लिखने का नाम
ही पिष्टपेषण है ॥

मैंने स्वामी जी का प्रतिनिधि होकर जो लोगों के नाम लिखे थे वे
आप की आज्ञा के अनुसार लिखे थे क्योंकि आपने लिखा था कि श्रीयुत
पं० गङ्गाप्रसाद जी वा पं० विष्णुलाल जी योग्य हैं उन्हीं के पास दोनों
पक्षों का लेख भेज दिया जावे वा आप किन्हीं को बतलावें। महाशय इस
लिये मैंने यहां के दीवान विद्वान् श्रीमान् महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर
प्रभृति के नाम लिखे थे मैंने बुरा क्या किया आप एक अच्छे वकील होकर
विद्वान् और संभावित लोगों को केवल सांसारिक प्रतिष्ठा में उच्च मानते हैं
अवश्य यह आपका साहस है और दर्शन ग्रन्थों को तो वे संभावित जायवे
हुज़ूर वगैरह महोदय जानते ही होंगे लेकिन थियोसाफिस्ट् लोग षट्दर्शन
ग्रन्थों को अच्छी तरह जानते हैं थियोसाफिकलसोसायटी में कदाचित् आप
गये होंगे तो अवश्यमेव आप को मालूम होगा कि दर्शन ग्रन्थ जानने वाले
कितने लोग मौजूद हैं आप के विद्वान् लोग चाय कदाचित् फ़ैसले करने
वाले मध्यस्थ के करने से नहीं भी घबराते होंगे लेकिन आप को अवश्य
घबराहट है आप को अपने घबराहट की शान्ति के उपाय दो तीन मिल
भी जाते हैं एक तो समग्र सर्वदा किसी ग्रन्थ को नहीं मानना दूसरा मध्यस्थ
किसी के भी पक्ष का है यह कहदेना अथवा किसी ने कुछ योग्य प्रकरण

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

मशाअत उस पर कुछ भी कहदेना और किसी की न मानना इस का भी आप कुछ उत्तर देदेवेगे परन्तु भाई साहब लिखापढ़ी किञ्चित् शोच विचार कर कीजिये लोगों की मथ्यो बन रही है समय विलक्षण है धर्म की रक्षा समय देख कर योग्यता से करनी अच्छी है ॥

६—जिस किसी अन्य मतस्थ को हम लोग मध्यस्थ पञ्च बनावेंगे वह पुरुष अपने मत की कथा हमारे फैसले में मिला देवेगा यह एक आश्चर्य की कथा है क्या कोई मुसलमान किसी धनी पुरुष के घरू झगड़े को तै करने में अपने मत की बात मिलाता है जो मिलानेवाला है वह पंच नहीं और हजारों पञ्चातें वेद के अनेक फ़िर्क़ोंवाले दूसरों की पंचातें किया करते हैं ॥

७—एक ही मजिस्ट्रेट वा योग्य राजा महाराजा किसी भी विद्या का विद्वान् व्यवहार प्रवीण किसी भी ज़बान में अनुवादित ग्रन्थों का क्या फ़ैसला नहीं करता है ?

८—जिस के प्रमाणादि मज़बूत होते हैं अवश्यमेव परीक्षा अधिकार देसक्ता है यह बात दोनों पक्षों को समान है मध्यस्थ परीक्षा में डर क्या है ॥

९—जीव तो अल्पज्ञ है ऐसा आप का भी शायद् सिद्धान्त है और बिना कारण किसी को अल्पज्ञ नहीं कहना चाहिये किन्तु कारण बता देना उचित है ॥

१०—मतमतान्तर के झगड़ों में लोगों को मज़ा हुई है यह बात प्रसिद्ध है और आर्यसमाज व आत्मारामसागर की बात को स्मरण कीजिये ॥

११—मैंने टिहरी महाराज की बात पर या शास्त्रार्थ बालकों के सा लेख नहीं लिखा है किन्तु मेरी नाक़िस बुद्धि के अनुसार वहां शास्त्रार्थ में गड़बड़ हो जाने से ऐसा फल होगा ऐसा मेरा अभिप्राय है आप तटस्थ शाखापिष्टवसे मत कीजिये इस के सिवाय आप मुझ को बुरा भला जो कहें अधिकार है आप को मैं महाराष्ट्र मण्डली के अनुसार सद्गृहस्थ मानता हूं इस लिये आप के उचित प्रस्तुति वाक्य सहन करता हूं यह मेरा कर्तव्य है परमेश्वर आप का भला करे ॥

१२—प्रमाणों को आप माने या न माने आप को अपने कर्तव्य पर पूरा पूरा अधिकार है लेकिन जो बात आप अपने लेख में लिख चुके हैं कि (अन्य बातों तो कोई विवाद की नहीं है) इस का अर्थ ज़रूर ही कुछ करना होगा ॥

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

१३–आप के कितने उचित् नियम हम ने अपने नियमों में मान लिये हैं उन को हमारे नियमों पर सम्यक्दृष्टि देकर आप देख लीजिये ॥

१४–आप से पूछता हूं कि एक आदमी ने प्रतिज्ञा की कि शास्त्रों में पशुबध नहीं है अब हेतु बताना चाहिये या नहीं अगर स्वयं हेतु नहीं बतावे तो दूसरे के पूछने पर तो बताना होगा कि नहीं ? अथवा आक्षेप कर्ता पूछे कि याग में पशुबध करना अनुचित है इस में कोई भी प्रमाण नहीं है कदाचित् प्रमाण है दो और उस ने प्रमाण दिया और आक्षेपकर्ताने फिर आक्षेप किया उस ने फिर भी खण्डन किया अब समझ लीजिये उप- संहार किस को सर्फ रहा कुछ अनुचित कहा तो माफ कीजियेगा ॥

शङ्कर हरिहर तीर्थ

उत्तर–

श्रीयुत शङ्कर हरिहरतीर्थ स्वामी जी ! नमस्ते

यह तीसरा पत्र भी देर से आया । स्वामी जी महाराज ! इस पत्र के १३ वें वाक्य में जो हमारे उचित नियमों का स्वीकार किया है हम इस का आप को धन्यवाद देते हैं । कृपया यह स्पष्ट और बतलादीजिये कि ७ नियमों में से किस २ संख्या के नियम को आपने उचित समझ कर स्वीकार किया है । आपने जो ५ वें वाक्य में हमारी शान्ति के ४ उपाय बतलाये हैं उन में से दो उपाय तो आप भी अपनी शान्ति के मानते हैं । १–वेदातिरिक्त किसी समय ग्रन्थ को न मानना । हम यह बता सकते हैं कि स्वामी शङ्करा- चार्य ने भी वेदातिरिक्त ग्रन्थों को समग्र नहीं माना । सर्वदा किसी ग्रन्थ को न मानना भी आप पर ही घटता है क्योंकि " अश्वालम्भं गवालम्भं इत्यादि समयानुकूल ग्रन्थों की मंसूखी बहाली आप ही करते हैं । इस लिये यह परमोपाय आप ही की शान्ति का है । २–मध्यस्थ किसी पक्ष का नहीं यह जो आपने हमारी शान्ति का उपाय बतलाया है इस से मालूम होता है कि आपको शान्ति एक पक्षस्थ मध्यस्थ से भी हो जाती है । यदि इतनी उदारता है तो झगड़ा क्या? आप हमारे मध्यस्थ का ही स्वीकार करलीजिये अन्य २ जो आपने शान्ति के उपाय बतलाये कि प्रकरण चलाते २ कुछ कह देना और किसी की न मानना । हमारी शान्ति के उपाय तो ये नहीं प्रत्युत हम को इस से भय है । इसी लिये हमने लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने का नियम लिखा है जिस से उक्त दोष नहीं हो सकता । ६ ठे वाक्य में जो आपने यह

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

लिखा है कि क्या कोई मुसल्मान किसी के घरू झगड़े को ते करने में अपने मत की बात मिला देता है ?

यह विषम दृष्टान्त है। क्योंकि यह घरू झगड़े में मत की बात नहीं मिलाता परन्तु जब मत का झगड़ा होता है तो मत की बात मिलाने का सन्देह अवश्य हुवा करता है॥

बहुत क्या आप जो अपनी शान्ति के इसी उपाय पर जमे हुवे हैं कि अपने मत का मध्यस्थ नियत करके शास्त्रार्थ में जय का सार्टिफ़िकेट लेलें, यह कदापि न होगा॥

इस लिये आप से प्रार्थना है कि आप इस सहारे को छोड़ कर उदारता से काम लें जिस से कि पक्षपात न पाया जावे और मुन्तज़िम के तरीक़े को स्वीकार करें। इस को ध्यान में रक्खें कि मुन्तज़िम भी वही होगा जो उभय पक्ष से स्वीकार किया जायगा॥

इसलिये मुन्तज़िम के तरीक़े को स्वीकार करके कृपया पृथक् काग़ज़ पर स्पष्ट लिख भेजें कि हमारे ७ नियमों में से अमुक २ नियम इस प्रकार स्वीकृत हैं॥

शीघ्रता करना इस लिये आवश्यक है कि आप तो अपने स्थान पर बैठे हैं और बहुत काल तक बैठे रह सकते हैं और आप संन्यासी होने से आप के किसी कार्य की हानि नहीं, किन्तु हमारे विद्वान् गृहस्थ हैं और अनेक कार्य छोड़कर आये हैं जो बहुत काल तक व्यर्थ नहीं ठहर सकेंगे इस बात को आप भी जान सकते हैं॥

अन्य वाक्यों में जो आपने कहर आदि उपालम्भ दिये हैं उन का उत्तर हम नहीं देना चाहते॥

२१।४।०३ समय १ बजे दिन—

केशवराव

इस का उत्तर यह आया कि:—

श्रीयुत प्रधान आर्यसमाज हैदराबाद महाशय सज्जन भाई केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आप को मालूम हो कि आप का ६ नम्बरी पत्र मुझे मिला पढ़ कर सन्तोष हुवा॥

भाई साहेब आपने अवश्य कुछ न कुछ उत्तर के नाम से लिखदिया लिखा कीजिये आप को अपने लेख वग़ैरह की रचना का अधिकार है॥

आपने दो साधनों को अङ्गीकार किया यह आप की सज्जनता है॥

SGDF

बाक़ी शङ्कराचार्य महाराज ने वैदिक स्मार्त सिद्धान्त अनुयायी ग्रन्थों को सर्वथा सर्वदा निर्भ्रम माना है और उन्हीं की मर्यादा से व्यवस्था की है और जिस वाक्य को आपने उद्धृत कर समाधान करना चाहा है वह प्रचलित आप के पक्ष का बाधक है कदाचित् आप स्वीकार करलेवें कि कली पञ्च विवर्जयेत्" तो विवाद ही क्या है इस सामान्य वाक्य और "चातुर्वर्ण्यविभागोस्ति" इस विशेष वाक्य का विचार न करना ही गपड़चौथ का कारण है यह बात हम जानते हैं कि अर्थवशाद्विद्वानों को भी एक नवीन मार्ग का आश्रय लेना पड़ता है और लोक परलोक की भीति को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है इस में कोई सन्देह नहीं है कि सज्जन अपने पुरुषार्थ को तोलकर ख़र्च किया करते हैं आप मुझ पर जो चाहे सो घटाते रहें परन्तु घटाना उसी का नाम है जो बात घट सके क़लम दावात स्याही काग़ज़ दोनों की कमी नहीं है हमतो दूषण भूषण उसी को समझते हैं जिस को लोग अङ्गुलि न उठा सकें हम अवश्यमेव शान्त हैं आप झगड़ा फैलाकर अशान्ति करनेको उपस्थित हैं आप को अच्छीतरह शोचना चाहिये ॥

दूसरी बात के लिये आप ही उदारता कीजिये परोपदेशे पाण्डित्यं और बातूनी जमाख़र्च से लाभ ही क्या है अवश्य आप को भय है मगर भय होकर भी भय नहीं है यह एक विचित्र गाथा है ॥

आप लेखबद्ध शास्त्रार्थ की पुकार ही सार्टीफ़िकेट ले लीजिये मगर रीति से सार्टीफ़िकेट लेकर आप अपने पक्ष को रवाने करने को कब समर्थ होंगे हम को असम्भव भान होता है और आप को भी केवल गलगर्जना करनी शायद अच्छी न जचती होगी ॥

हम मध्यस्थ का होना अच्छा समझते हैं लेकिन आप का सार्टीफिकेट कैसे होगा आपने तो सार्टीफ़िकेट मध्यस्थ के विना माना है ॥

आपने बीड़ा उठाया है मैं बीड़ा उठानेवाला नहीं हूं आप अनेक अंशों में स्वार्थवशात् निर्भय हैं मेरा कोई स्थान नहीं है आप की लगाई हुई पञ्चात से मुझे यहां आना पड़ा है मुझको इस झगड़े से छुड़ाइये मैं आप को आशीर्वाद दूंगा ॥

सहारा आप ही ले रहे हैं जो कि विना मजिस्ट्रेट के फ़ैसला करना और कराना चाहते हैं आप गृहस्थ हैं आपके पास सब कुछ है आप वकील

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

हैं सज्जन हैं उदारता इस वक़्त आप की ओर ताक रही है आप अवश्य-मेवोदारता दिखाइये ॥

मैं मेरे नियमों पर जमा हुआ हूं मगर आप अपने नियमों को छोड़ कर शायद निर्भय हुए हैं आप ने मध्यस्थ स्वीकार करलिआ है नियमों का नाम ही शान्तिकारक है ॥

मेरे नियम देख कर अपने नियमों से मिलान कर लीजिये उस से आप को मालूम हो जावेगा ॥

क्या कोई कहेगा कि यहां माध्व और वैष्णवों में विवाद हुआ था। और तीसरे मध्यस्थ वैदिक स्मार्त ने अपना मत उस में मिला दिया था यह यहीं हैदराबाद की बात है लोगों से पूंछ लीजिये ॥

अवश्य आप के विद्वान् गृहस्थ हैं मगर अच्छी तरह देखा जावे तो आप ही ने सब को तकलीफ दी है आप ने जिन को उपालम्भ समुझ कर उत्तर नहीं दिये हैं यह आप की योग्यता है ॥

अब भी गड़बड़ छोड़ कर शान्ति का उपाय सोचिये हम लोगों को झगड़े से बड़ा दुःख है ॥

२७ । ४ । ०३ शङ्कर हरिहर तीर्थ

जब किसी प्रकार कुछ स्थिरता न पाई गई तो समाज ने नियम और पत्र अन्तिम निवेदन के साथ इस प्रकार भेजा कि—

ओ३म्

स्वामी जीं नमस्ते !

आज जो बात स्वामी अच्युताश्रम जी ने बाबू कुमार बहादुर जी से कही है कि सभापति स्वयं नियम बनालेगा उन्ही को दोनों मानलेंगे। यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। हम नहीं जानते कि ३ दिन से जुबानी बात चीत में भी आप की राय कभी कुछ और कभी कुछ क्यों बदलती रहती है।

२—जो कुछ नियम हमने आपने बैठ कर बनाये इस बात से वे सब निष्फल होगये।

३—पत्र द्वारा जो बात चीत नियमों की चलरही थी उसे आप ने जुबानी बात चीत से निष्फल कर दिया था ॥

४—यदि इसी प्रकार अपने बचाव के लिये क्षण २ में आप की राय बदलती रहेगी तो कुछ निर्णय न होगा। इसलिये हम आज अब तक के

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

पत्र व्यवहार और ज़ुबानी बात चीत से जो सारांश निकला है तदनुसार नियमावली भेजते हैं ।

५-इन नियमों पर आज रात्रि के १० बजे तक आप स्वामी अच्युताश्रम जी के हस्ताक्षर करा कर हमारे पास भेजदें हम अपने पण्डित के हस्ताक्षर कराके भेजते हैं ॥

६-यदि आप पं० आर्य मुनि जी से शास्त्रार्थ न करना चाहें और पं० तुलसीरामस्वामी से शास्त्रार्थ करने का आग्रह करें तो हम को यह भी संज़ूर है दोनों में से जिस से आप अपने लिये सुगमता समझें, करें, हमें कुछ विवाद नहीं किन्तु पं० तुलसीराम जी के साथ शास्त्रार्थ करने में केवल १ नियम यह अधिक होगा कि-

" दोनों वादी प्रतिवादी अपने २ कथन को उसी नियत समय में संस्कृत में लिखकर हस्ताक्षर करके, बोल के, देशभाषा में अनुवाद करके वा कराके एक दूसरे को देतेजायंगे "

७-हमारे विचार में तो आप को उक्त प्रकार के शास्त्रार्थ में कोई ननु न च नहीं होना चाहिये क्योंकि आप के विचार में आप के स्वामी जी में ऐसा बल है कि उन को किसी प्रकार और किसी पं० से भी शास्त्रार्थ करने में भय नहीं है । और हम लोगों को तो स्वामी जी की विद्या की थाह इतने ही से मिलगई है कि उन्हों ने गोतमसूत्र अ० १ आ० २ सू० १ में जो सिद्धान्ताऽविरुद्धः का यह अर्थ किया कि " जिन का एक सिद्धान्त हो " इसलिये वादकथा का होना गुरुशिष्य में ही पाया जाता है । अस्तु । यह प्रकरण वश लिखागया ॥

८-सार यह है कि इन नियमों पर हस्ताक्षर दोनों पण्डितों के करालें और फिर इन नियमों पर चलाने वाला सभापति चुन कर कल ४॥ बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ करदें । नहीं तो इस के पश्चात् हम ज़ुबानी वा पत्रद्वारा कोई बात चीत न करेंगे ॥ २८ । ४ । ३

केशवराव शर्मा

प्रधान आर्यसमाज हैदराबाद-दक्षिण

इस के साथ निम्नस्थ नियमपत्र भी भेजागया:-

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

ओ३म्

नियम शास्त्रार्थ

१–इस शास्त्रार्थ में अच्युताश्रम स्वामी जी सनातन धर्म की ओर से तथा पं० आर्यमुनि जी आर्यसमाज की ओर से वक्ता होंगे ॥

२–विषय " यज्ञ में पशुवध वेदविहित है वा नहीं ? " होगा, जिस में सनातन धर्मी को विधि और आर्यसमाज को निषेध उपपन्न करना होगा परन्तु यह निर्णय करने को कि जिस वेद से पशुवध पर विचार होगा वह वेद मन्त्रब्राह्मणात्मक है वा केवल मन्त्रात्मक । प्रथम इसी अवान्तर विषय पर शास्त्रार्थ होकर प्रकृत पशुवध विषय पर शास्त्रार्थ होगा ॥

३–दोनों ओर के वक्ता अपने २ हस्ताक्षर करके   को सभापति स्वीकार करेंगे । सभापति इन नियमों से किसी पक्ष को उलांघने नहीं देगा । उस को जय पराजय के निर्णय का अधिकार न होगा ॥

४–शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा से होगा और उस का देश भाषा में अनुवाद सर्वसाधारण को समझाने के लिये साथ २ ही वक्ता स्वयं करता जायगा वा अपने पक्ष के अन्यपण्डित से कराता जायगा ॥

५–शास्त्रार्थ में प्रथम आर्यपण्डित उपक्रम १५ मिनट तक करेगा । फिर २० । २० मिनट बराबर उत्तर प्रत्युत्तर चलेगा जब तक कि शाम के ८ बज जांवे । शास्त्रार्थ ठीक ४॥ बजे से ८ बजे शामतक हुवा करेगा । जब प्रकृत पशुवध विषय पर ५ । ५ । बार उत्तर प्रत्युत्तर होचुकेंगे तब उस विषय का शास्त्रार्थ बन्द करदिया जायगा ॥

६–कोई पुरुष शोर मचावे वा जय बोले वा उच्च स्वर से हंसेगा तो सभापति उस को रोकदेंगे, फिर भी ऐसा करे तो सभा से बाहर कर देंगे ।

७–एक वक्ता के नियत समय के बीच में उस का वादी वा प्रतिवादी वक्ता बोलेगा वा कटुशब्द कहेगा तो वह शास्त्रार्थ के अयोग्य समझा जायगा, पराहत समझा जायगा ॥

८–वादी प्रतिवादी दोनों को बैठने और आसनादि की प्रतिष्ठा समान दी जायगी ।

९–कोई वादी वा प्रतिवादी किसी को संबोधन करके अपने वर्णन में शहादत (साक्ष्य) नहीं लेसकेगा । लेगा तो रोका जायगा ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

१०-ब्राह्मणादि के वेदत्व खण्डन वा मण्डन में उन के असल मज़मून में परस्परविरोधादि हेतु काम में लाये जायंगे।

११-इन नियमों की तीन कापी कीजांयगी जिन में से हरएक पर वादी प्रतिवादी के हस्ताक्षर होंगे। १ सभापति को और एक एक वादी प्रति-वादी को दीजायगी। सभापति चाहे तो उर्दू तर्जुमा करके नियमों की अपनी कापी पर वादी प्रतिवादी के हस्ताक्षर करालेगा।

१२-शास्त्रार्थ की सभा में कितने २ टिकट दोनों पक्षवालों को दिये जावें, जिस से उन टिकटों द्वारा सभ्यलोग बुलाये जावें, यह विषय पुलिस के आधीन रक्खा जावे, जितने२ टिकट पुलिस मुनासिब समझे, उतने२ दोनोंपक्षवाले तक़्सीम करें॥

ह० आर्यमुनि

इस का उत्तर अगले दिन यह आया कि-

श्रीराम१

सनातनधर्मसमाजार्यसमाजयोर्योयम्विवादउत्पन्न-स्सचतथैववरीवर्त्ति तन्निवृत्यर्थंउद्युक्ताभवन्तस्तच्छान्तये ऽसमर्थाः वयन्तथैवअतोऽवश्यंश्वस्सायंतनेसभाआरब्धव्या तत्रैवसर्वोपिनियमोभविता अतस्सभाध्यक्षोनियमनीयस्स-एवसर्वंनियमयतिएतदन्यो विचारोनालोचनीयः॥

मैत्रेणैवविचारःकर्तव्यइतिशिवम्॥

वैशाख शुक्ला २ सं० १९६० शङ्कर हरिहर तीर्थः

इस पत्र में हमारे भेजे नियमों का कोई उत्तर नहीं, केवल यह आशय है कि कल सभा करके नियम स्थिर होंगे॥

अस्तु इस के पश्चात् नीचे लिखा विज्ञापन सनातनधर्म के पक्ष से प्र-काशित होकर २९।४।३ को बांटा गया। उन्हों ने मन में समझा होगा कि कदाचित् इस मनमानी सभा में समाजी लोग न आवें तो मुफ़्त में जय-कार बोल कर खड़े हो जाने से काम बन जायगा, सो न बना। विज्ञापन यह था:-

श्री

श्री सनातन धर्मावलम्बी द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अर्थात्

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

श्री शङ्कराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री मध्वाचार्य मतस्य पूज्य विद्वान वर्णाश्रमी महोदयों की चरण सेवा में प्रार्थना है कि आर्यसमाजी लोगों ने यज्ञादिक के ऊपर जो आक्षेप किया है उस का नियमादिक पूर्वक शास्त्रार्थ का विचार कल ता० ३० एपरैल सन् १९०३ ई० रोज गुरुवार को चार बजे से श्रीमान् राजा बहादुर ज्ञानगिर नरसिंहगिर जीकी बङ्गाल बैंक के सामने वाली बड़ी कोठी चादर घाटमें होगा इस लिये प्रार्थना है कि आप लोग कृपा करके नियत समय पर पधारियेगा ॥

ता० २९ एप्रिल १९०३ रामगोपाल मालानी

इस का अनुवाद उर्दू अंग्रेजी में भी छपा था ॥

इस के अनुसार सायंकाल ता० ३०।४।३ को सभा हुई। जिस में नीचे लिखा निमन्त्रण पत्र पं० तुलसीराम स्वामी के नाम आयाः—

॥ श्रीः ॥

श्रीपंडित तुलसीराम जी को रामगोपाल मालानी के तरफ से हमारे तरफ से शास्त्रार्थ के लिये सब तयारी है। कृपा करके पधारिये।

ता०३०ऐप्रेल १९०३

इस के उत्तर में समाज की ओर से पूंछागया कि—

ओ३म्

श्रीमान् सेठ रामगोपाल मालानी जी योग्य।

पत्र आया। विज्ञापन छपे में नियम ते करना आजका काम है। चिट्ठी का आशय शास्त्रार्थ करना है। आप साफ लिखें कि मेरे बुलाने का क्या प्रयोजन है। हम शास्त्रार्थ करने को तो आये ही हैं परन्तु नियमादि की स्थिरता विना एक सभा में उभयपक्ष का संघट्ट होना ठीक नहीं है। ऐसा ही पुलिस चाहती है। ३०।४।३ तुलसीरामस्वामी

उत्तर आया कि:—

श्री

श्रीयुत पंडित तुलसीराम जी को रामगोपाल मालानी के तरफ से—आप को चिट्ठी पहुंची जैसा हिंदी भाषा के नोटिस में प्रसिध्य किया

SGDF

गया है पहिले नियम ठहरा कर पश्चात् इसी सभा में शास्त्रार्थ होगा आप कृपा करके जल्दी पधारिये ॥ ३० । ४ । ०३

इस पत्र को पाकर सभा में तुलसीरामस्वामी गये, और सेठ रामलाल जी को सभापतित्व स्वीकृत कराके कहा कि अब तक जो ढील स्वामीअच्युताश्रम जी की ओर से हुई और ता०२४ के स्थान में ३० होगई ७ दिन बीत गये इस बात को स्पष्ट करने के लिये मैं अब तक का पत्रव्यवहार सुनाना चाहता हूं। स्वामी अच्युताश्रम जी बोले कि "अब तक पत्र व्यवहार हुआ सो सब झूंठा समझो । अब आगे आज जो स्थिर हो सो ठीक" अस्तु । पं० तुलसीरामस्वामी एक एक करके नियम प्रस्तुत करते गये और उभयपक्ष की स्वीकृति से ये नियम स्थिर हुवे कि:-

ओ३म्

नियम शास्त्रार्थ

१-इस शास्त्रार्थ में अच्युताश्रम स्वामी जी सनातनधर्म की तरफ़ से तथा पं० आर्यमुनि जी आर्यसमाज की तरफ़ से वक्ता होंगे ॥

२-विषय "यज्ञ में पशुवध वेदविहित है वा नहीं" होगा, जिस में सनातनधर्मी को विधि और आर्यसमाजी को निषेध उपपन्न करना होगा । परन्तु यह निर्णय करने को कि जिस वेद से पशुवध पर विचार होगा वह वेदमन्त्र ब्राह्मणात्मक है वा केवल मन्त्रात्मक है। प्रथम इसी अवान्तर विषय पर शास्त्रार्थ होकर प्रकृत पशुवध विषय पर शास्त्रार्थ होगा ॥

३-दोनों ओर के वक्ता अपने २ हस्ताक्षर करके   जी को सभापति स्वीकार करेंगे । सभापति इन नियमों से किसी पक्ष को उलांघने नहीं देगा। उस को जय पराजयके निर्णय का अधिकार न होगा ॥

४-शास्त्रार्थ संस्कृतभाषण से होगा और उस का देश भाषा में अनुवाद सर्वसाधारण को समझाने के लिये साथ ही वक्ता करते जायंगे । वा अपने पक्ष के अन्य पण्डितों से कराते जायंगे ॥

५-शास्त्रार्थ में प्रथम आर्य पण्डित उपक्रम करेगा १५ मिनट तक । फिर २० । २० मिनट बराबर उत्तरप्रत्युत्तर चलेगा । जब तक शाम के ८ बज जावें । शास्त्रार्थ ठीक ४॥ बजे से ८ बजे शामतक हुवा करेगा । जब पशुवध विषय पर ४ दिन उत्तर प्रत्युत्तर हो चुकेंगे तब उस विषय का शास्त्रार्थ बन्द कर दिया जायगा ।

SGDF

६-कोई पुरुष शोर मचावे, जय बोले, ताली बजावे, ऊंचे स्वर से हंसेगा तो सभापति उस को रोकदेंगे। फिर भी ऐसा करे तो सभा से बाहर करदेंगे।

७-एक वक्ता के नियत समय के बीच में उस का वादी व प्रतिवादी वक्ता बोले वा कटु शब्द कहेगा तो उसे सभापति रोक देंगे॥

८-वादी प्रतिवादी दोनों को बैठने और आसनादि की प्रतिष्ठा समान दीजायगी॥

९-कोई वादी वा प्रतिवादी किसी को संबोधन करके अपने वर्णन में साक्ष्य नहीं लेसकेगा, लेगा तो रोका जायगा॥

१०-इन नियमों की ५ कापी की जायंगी जिन में से हरेक पर वादी प्रतिवादी के हस्ताक्षर होंगे। १ वादी १ प्रतिवादी १ सभापति १ सुपरिंटें-डेंट पुलिस १ मेजिस्ट्रेट को भेजी जायगी। आज्ञा आने पर शास्त्रार्थ होगा॥

११-विज्ञापन केशवराव जी वकील और सेठ रामगोपाल मालाणी जी के हस्ताक्षर से छपेंगे। मिति वैशाख शु० ३ गुरुवार १९६० संवत

ह० अच्युत स्वामी
(संक्षिप्त अरबी अक्षरों में)

ह० आर्यमुनि

ये नियम स्थिर हो चुके थे कि करे कराये काम पर पानी फेरने को स्वामी अच्युताश्रमजी कहने लगे कि हम हस्ताक्षर नहीं करेंगे। बहुत आग्रह किया परन्तु अन्त में सभापति (जो उन्हीं की सनातनसभा के साथी थे) आदि मान्य पुरुषों के अनुरोध से हस्ताक्षर कर दिये। उस समय पुलिस के इन्स्पेक्टर महाशय भी विराजमान थे। उन की इच्छानुसार उन को भी नियम पढ़कर सुनाये गये। उन्हीं से यह भी ज्ञात हुवा कि नियमों की कापी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस व मेजिस्ट्रेट साहब को भी देनी चाहिये और उन्हीं की अनुमति से यह भी स्थिर हुवा कि स्वामी अच्युताश्रम जी की ओर से सेठ रामगोपालमालानी और आर्यसमाज की ओर से पं० केशव राव जी प्रधानसमाज मिलकर दरख़्वास्त मेजिस्ट्रेट साहब की सेवा में करेंगे जिस से पुलिस का समुचित प्रबन्ध रहे। सभापति के नाम की जगह यह स्थिर हुवा कि श्रीमान् बख़्शी रघुनाथप्रसाद साहब जज हाईकोर्ट और वे न हों तो सेठ रामलाल जी जो आज की सभा के सभापति हैं, शास्त्रार्थ सभा के सभापति नियत किये जावेंगे॥

SGDF

बस इस समय से हम लोगों ने समझ लिया था कि कल ता० १ को ४॥ बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ होजावेगा। तथाच-मेरठ आदि को पण्डितों के बुलानार्थ तार भेजे गये कि कल से शास्त्रार्थ होगा। इत्यादि॥

यद्यपि आर्यसमाज पर भार न था कि १० वें नियमानुसार नियमों की ५ कापी समाज करावे परन्तु फिर भी समाज ने ५ कापी भी कराईं। समाज के प्रधान व मन्त्री जी सेठ रामलाल जी के पास भी गये कि बख़्शी जी साहब को सभापतित्व स्वीकार करणार्थ प्रार्थना करें। सेठ जी से ज्ञात हुवा कि उन्हें अवकाश नहीं होगा। इसलिये उन के अभाव में नियमानुसार सेठ रामलाल जी ही सभापति समझे गये और समाज ने शेष कापी नियमों की ता० १। ५। ३ को ही स्वामी अच्युताश्रम जी के पास हस्ताक्षर करने को भेजदीं और आर्य पण्डित के हस्ताक्षर प्रथमही सब पर करा भेजे॥

इस पर ३ दिन बीत गये, न तो स्वामी अच्युताश्रम जी ने नियमों की अन्य कापियों पर हस्ताक्षर किये, न सेठ रामगोपाल मालानी जी ने कुछ किया। जब कई वार कहलाने पर भी सनातनी भाइयों में से कोई भी प्रबन्धार्थ न उठा तो समाज ने एक पबलिक नोटिस छपवाकर बांटा जिस की १ कापी सेठ रामगोपाल मालानी जी व १ स्वामी अच्युताश्रम जी को भेजी, जिस का आशय यह था कि स्वामी अच्युताश्रम जी ने प्रथम तो २४ से ३० तक ७ दिन नियमों में टलाये फिर ३० तारीख़ एप्रिल को नियम भी जैसे तैसे स्वीकार किये तो अब सेठ रामगोपाल मालानी जी नियत रीति से ३ दिन हो गये, समाज के सभापति के साथ दरख़्वास्त देने में ढील कररहे हैं। प्रत्युत उन्होंने एक चिट्ठी जब कि १४ घंटे आदमी तक़ाज़े वाला द्वार पर रहा तो लिख भेजी कि आप जाने वा स्वामी अच्युताश्रमजी जाने, मैं कुछ न करूंगा। उस पत्र का यह आशय है। आगे पत्र का उर्दू से नागरी अनुवाद करके भी छापते हैं। यथा-

६ मई १९०३ ई० श्रीमान् कुंवरबहादुर सेक्रेटरी आर्यसमाज हैदराबाद दक्षिण। आप का पत्र उस बड़े नोटिस के सहित जो ३ अप्रेल (मई) १९०३ ई० का छपा था प्राप्त हुवा अब प्रार्थना है कि मैंने आप की चार दिन तक प्रतीक्षा की कोई कार्यवाही आपने उचित रीति पर नहीं की है और पत्र आप का समस्त व्यर्थ लेख से भरा है। अतः अब आप को उचित है कि शास्त्रार्थ का फैसला श्रीस्वामी अच्युताश्रम महाराज से करलीजिये॥

आप का-रामगोपाल मालानी

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

धन्य हो ! सेठ साहब! आपने ४ दिन क्या प्रतीक्षा की? और क्यों की? जब आप सिकन्दराबाद रहते हैं और आर्यसमाज रेज़िडेंसी में है और दरख़्वास्त भी रेज़िडेंसी में ही देनी थी तो आप को यहां पधारना था, न कि ४ दिन तक चुप साधजाना और जब पबलिक नोटिस से आप को जगायागया तब आप की निद्राभङ्ग हुई तो यह कि स्वामी अच्युताश्रमजी से शास्त्रार्थ का निश्चय करलो। उन से क्या निश्चय करें और क्यों करें जब कि ज़िम्मा आपका ठहरा था कि केशवराव जी प्रधान समाज और आप दोनों मिलकर दरख़्वास्त करेंगे। अब आप स्वामी अच्युताश्रम जी पर टालने लगे? क्या आपने यह तो नहीं सोच लिया कि स्वामी अच्युताश्रमजी ने भोले पन से नियम शास्त्रार्थ भी स्वीकार कर लिये और अब मध्यस्थादि के बहाने शास्त्रार्थ से बचना असंभव है तो चलो दरख़्वास्त न करने से ही टलेगा। इस पर आश्चर्य यह है कि इधर तो आपका स्वामी अच्युताश्रम जी पर टालना, उधर स्वामी जी का यह कहदेना कि अदालती काम से हमें प्रयोजन नहीं, फिर अन्य किसी सनातनी भाई को इस कार्य के निर्वाहार्थ नियत न करना और इस पर भी उलटा यह लिखना कि चारदिन इन्तज़ार (प्रतीक्षा) किया और अन्त तक कचहरी न पधारना। अस्तु ॥

इधर स्वामी अच्युताश्रम जी ने समाज के विज्ञापन के उत्तर में यह पत्र भेजा कि—

श्रीराम

यद्भवताराजकीयलिप्यालिखित्वापत्रंप्रेषितम् तदवलोकितम् तत्रयेयमलसता सूचिता सानास्मदीयायतोभवान् सभाध्यक्षविषयकविशयमुत्पादितवान् निमयमपत्रिकालेखनेनएकः रघुनाथप्रसादःसनोचेत् रामलाल इति अन्यतरः कोपिननिश्चितः अतोमन्येनभवतांशास्त्रविचारेऽश्रद्धास्तीति।

यामत्रयाद्र्वागेवतन्निर्णीयज्ञापितश्चेत् पत्रं प्रेषयिष्येअतोऽस्मेवनिर्णयपत्रिका प्रेष्यानोचेद्दलसभावोभवतएवेतिमन्येअन्यादृशंपत्रंप्रकटीकृतंचेत्तद्दोषोपिभवदुपर्य्येवतिष्ठतीतिकिमधिकंलेखनीयम्—

ता० ३ मई सन् १९०३ ई० समय १ बजे का उत्तर १॥ बजे दिया गया ॥

इस पर स्वामी जी के अरबी में हस्ताक्षर हैं। आशय यह है कि हमने हस्ताक्षर करने में ढील इस लिये की कि बबूजी रघुनाथप्रसाद जी वा सेठ रामलाल जी में से कोई एक सभापति नियत नहीं हुवा ॥

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

इस का समाज ने तत्काल उत्तर दिया कि:—

ओ३म्

श्रीमन्!पत्रमागतं वृत्तमवगतं नात्रास्माकं शैथिल्यं यतोऽस्माभिस्तु श्रीरघुनाथप्रसादविषयेऽपि पृष्टः श्रीरामलालस्तेनोक्तं श्रीरघुनाथप्रसादाभिधो न स्वीकुरुतइति। तदभावे रामलालएवस्वीकृतो बोध्यः। अन्यान्यावश्यककृत्यानि भवत्पक्षस्थैः श्रीरामगोपालादिभिः कथंकृतानि नवेति भवानेव जानातु ॥

२ बजे दिन ३ । ५ । ०३ ह० कुमार बहादुर मन्त्री आर्यसमाज

अर्थात् हमने ढील नहीं की। किन्तु हमने सेठ रामलाल जी से पूछा तो ज्ञात हुआ कि बख़शी रघुनाथप्रसाद साहब स्वीकार नहीं करते तो उन के न मिलने से यह तो स्थिर ही होचुका था कि सेठ रामलाल जी सभापति हों। इस के प्रबन्ध संबन्धी अन्यकार्य आप के पक्षस्थ सेठ रामगोपाल मालानी जी आदि ने किस प्रकार किये वा नहीं, आप ही जानें ॥

इस का उत्तर फिर आया कि—

दृष्टभवदीयपत्रस्सन्लिखतिखलुरामलालनामासभाध्यक्षोनिश्चितः नियमपत्रिकायांहस्ताक्षरंनिक्षिप्यप्रेषिताअग्रेयत्कार्यंकर्तव्यम् तत्रत्वराक्रियताम् यतोभवानेवाभिषिक्तः सर्वकार्यकरणेनायंतत्रप्रवर्त्ततेभवदीयैर्वाअस्मदीयैर्वायद्यत्कृतंतत्सर्वंबिज्ञायक्षिप्रंशास्त्रार्थेउद्योगोभवतामस्तुअयन्तु समयेशास्त्रार्थंकर्तुं*आगमिष्यति इति भवान् जानातु ॥

ता० ३ । ५ । ०३

समय तीन घंटा ३० मिनट अच्युत स्वामी (अरबी में)

अर्थात् पत्र देख कर जाना कि सेठ रामलाल जी सभापति हुवे। नियमों की कापी पर हस्ताक्षर करके भेजी है। आगे शीघ्र कार्य जो करना हो आप

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

ही करें। क्योंकि सब कार्य भार आप पर ही नियत है। यह (मैं) किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। आप के वा हमारे पक्षस्थों ने जो जो किया सो सब जानकर आप शास्त्रार्थ का उद्योग करें। यह (मैं) तो शास्त्रार्थ करने को समय पर आजायगा॥

इस का उत्तर समाज ने नीचे लिखे अनुसार दिया कि:—

ओ३म्

श्रीमन्!

भवता दिनत्रयानन्तरं नियमपत्रेषु हस्ताक्षराणि कृतानि एतेन भवच्छैथिल्यं सुव्यक्तं, तस्मादेव च प्रबन्धकार्याणि न जातानि। अतो भवानेव शास्त्रार्थभीतः प्रतिभाति। अद्य भवत्कराक्षराङ्कितं नियमपत्रं राजाज्ञार्थं प्रार्थनापत्रं च प्रेषितमस्माभिः सभापतिसनीडे। श्रीमता भवन्मतावलम्बिना रामगोपालेन चाऽपि नाद्यावधि वयं विज्ञापिता न च कोपि यत्नोनुष्ठितोतस्तत्कृतं शैथिल्यमपि नास्मासु दोषावहम्॥

३।५।०३ कुमारबहादुर मन्त्री आर्यसमाज

अर्थात् आपने जो तीन दिन बिताकर नियमपत्रों पर हस्ताक्षर किये इस से आप की शिथिलता स्पष्ट है। इसी से प्रबन्ध कार्य भी न हुवे। इस से आप ही शास्त्रार्थ से भयभीत जान पड़ते हैं। आज आप का हस्ताक्षर युक्त नियमपत्र और राजाज्ञाप्राप्त्यर्थ प्रार्थनापत्र हमने सभापति जी के पास भेजदिया है। और आप के पक्षावलम्बी श्रीमान् सेठ रामगोपाल मालानी जी ने भी न कोई यत्न किया, न हम को कोई सूचना दी। इस लिये उन की शिथिलता भी हम पर नहीं (उन्हीं) पर दोष लगाती है॥

वक्तव्य—

और बातें तो सब हैं सो हैं ही परन्तु हम को श्री स्वामी अच्युताश्रम

SGDF

जी के संस्कृतपत्र की रचना पर दृष्टि देने से बड़ी हंसी आती है। उन्होंने अपने आप को अस्मत् शब्द से न लिख कर इदम् शब्द से न जाने क्यों लिखा है। यदि उन को देहादि में अहं (मैं) का भाव नहीं भासता, ज्ञानी होगये हैं तो उसी पत्र में (अस्मदीयैः=हमारे) प्रयोग क्यों करते हैं? और हम लोगों को भी अपने से अभिन्न मानते हैं तो हमारे लिये भवदादि शब्द प्रयोग क्यों करते हैं। अथवा अपने को इदम् शब्द (प्रथम पुरुष) से लिखने का कोई अन्य अपूर्व तात्पर्य होगा। परन्तु उस तात्पर्य में भी (अस्मदीयैः) प्रयोग अवश्य चिन्त्य रहेगा॥

ऊपर के हमारे पत्र का उत्तर यह आया कि–

श्रीसमय *

यदिदंपत्रंमैत्रभावान्यसूचकंप्रेषितंतदेवमेसन्तोषकरम् येनभवदीयमतखण्डनेयत्नोभवितामे परन्तु सभाध्यक्षविषयकसंशयनिवृत्तिमकृत्वाहस्ताक्षरयुक्तपत्रस्यप्रेषणम्नयुक्तं तन्निवृत्तौकृतायान्तुयुक्तमिति एवं स्थितौसत्यां यल्लिखितं न तन्मेदोषावहम्मध्यस्थपूर्वकजया*पराजयव्यवस्थापूर्वकशास्त्रार्थविचारेकस्यहृदभीतिरुत्पन्नावामनएव जानाति अथापिपरहृदयानुसारेणगमनेपिनक्षतिरिति आर्यसामाजिकनियमएवाहृतः तत्रापिनियमकालेसभाध्यक्षविषयेरामलालोपरिविश्वासमकृत्वा व्यक्तिद्वयोपरिअध्यक्षत्वंस्थापितम्। अतस्सर्वथापिभीतिं तावकीम् पश्यामि अस्तुनामक्षिप्रं सभा विधेया तत्रैवमत*शैथिल्यम् पश्यन्ति सभासदः॥

ता० ३ मे १९०३ ई० घंटा ८॥। रात०

अच्युतस्वामी (अरवी में)

रात्रि के १० बजे हस्तगत हुआ ३। ५। ०३ ई०

अर्थात्–जो यह पत्र मित्रभाव से अन्य (शत्रु?) भाव का सूचक भेजा वही मुझे सन्तोषकर हुआ। जिस से आपके मतखण्डन में मेरा यत्न होगा। सभापतिविषयक संशय निवारण के विना हस्ताक्षर करने उचित न थे।

संशय निवृत्ति पर तो ठीक ही थे। इस दशा में जो लिखा गया वह मुझ पर दोष नहीं लगाता। मध्यस्थ पूर्वक जय पराजयपूर्वक व्यवस्थायुक्त शास्त्रार्थ में किस के हृदय में डर उत्पन्न हुवा, मन ही जानता है। इसपर भी पराई रुचि के अनुसार चलने में भी कोई हानि न जानकर आर्यसमाज का नियम ही मान लिया। उस पर भी नियम स्थिर करते समय सभापति के विषयमें रामलाल जी पर विश्वास न करके दो व्यक्तियों पर सभापतित्व स्थापित किया। इस से सर्वथा तेरा भय देखता हूं। ख़ैर अब शीघ्र सभा करो, वहीं सभासद् मेरी शिथिलता देखते हैं॥

वक्तव्य—हम नहीं जानते कि स्वामी जी ने हमारे पत्र में मैत्रभाव से अन्य (शत्रु) भाव किस शब्द से जाना जो उन को हमारे मत खण्डनार्थ क्रोध का कारण हुवा। सभापति तो स्थिर थे ही, बख़्शी जी वा उन के अभाव में सेठ रामलाल जी। जब कि एक कापी पर ३०।४।०३ को स्वामी जी ने हस्ताक्षर कर दिये तो शेष नक़लों पर हस्ताक्षर न करना और कारणाभास बताकर टालना क्या अर्थ रखता है? कोई मनुष्य किसी काम का यत्न तो कुछ न करे और बार २ यह कहा करे कि "मैं तो त्यार हूं" "जल्दी करो" तो इस से क्या पाया जाता है? हमारी रुचि को सर्वसाधारणों के अनुरोध से सभा में दबकर मानलेना और तत्क्षण भी हस्ताक्षर करने से इन्कार करना, और फिर हस्ताक्षर १ कापी पर करके भी जो मसविदा था, साफ़ कापियों पर हस्ताक्षर करनेमात्र में ३ दिन लगा देना और जिन की आज्ञा में सेठ लोग किंकर की भांति उपस्थित हों, अपनी ऐसी प्रतिष्ठा होते हुवे भी सेठ रामगोपाल मालानी जी को प्रेरित करके मेजिस्ट्रेट साहब तक न भेजना क्या भय से ख़ाली समझा जा सकता है? दो व्यक्ति पर सभापतित्व नहीं हुवा था प्रत्युत एक के अभाव वा अलाभ में दूसरा हो, यह उभयपक्ष से निर्धारित हुवा था। इस को हम पर डालना क्या निर्भयता का प्रमाण है?

इसी प्रकार के उज़रों से भरा सेठ रामगोपाल मालानी जी ने एक नोटिस प्रकाशित किया जिस के उत्तर में सेठ जी से समाज ने निम्नलिखित विज्ञापन छपवाकर प्रार्थना की। यथा—

ओ३म्

सेठ रामगोपाल जी मालानी की सेवा में प्रार्थना—

जब कि ३० एप्रिल सन् १९०३ ई० को हुई सभा के नोटिस के अनुसार

SGDF

सेठ साहब की ओर से यह निश्चित हुआ था कि सेठ जी सनातनधर्म की ओर से और मिस्टर केशवराव जी प्रेसीडेण्ड आर्यसमाज मिल कर शास्त्रार्थ का विज्ञापन प्रकाशित करेंगे और सब प्रबन्ध निश्चित प्रयत्नों से किया जायगा। विपरीत इस के उक्त महाशय ने कोई ध्यान शास्त्रार्थ के प्रबन्ध सम्बन्ध में अब तक नहीं दिया, परन्तु आर्यसमाज ने स्वीकृत नियमों की पांच कापी करने के भार को भी अपने ज़िम्मे लिया, व सेठ रामलाल जी की सेवा में भी कई बार उपस्थित होकर प्रार्थना की कि शास्त्रार्थ सम्बन्धी यत्न कीजिये इत्यादि । क्योंकि सेठ साहिब ने १ मई के प्रातःकाल को कहा था कि बख़्शी रघुनाथ प्रसाद साहिब प्रेसीडेन्ट होना स्वीकार नहीं करते हैं। इस दशा में सेठ रामलाल जी ही स्वीकृत नियमानुसार सभापति शास्त्रार्थ नियत हुवे ॥

अतः सेठ रामगोपाल जी का यह नकार कि (जो उन्हों ने नोटिस ३ मई १९०३ के छपे में लिखा है और उपरोक्त नोटिस को वास्तव में ५ मई १९०३ को प्रकाशित किया है कि स्वामी अच्युताश्रम जी ने सभापति का निर्णय न होने के कारण नियमों की प्रति पर हस्ताक्षर नहीं किये थे। इसलिये ठीक नहीं है कि इस अवस्था में महाशय बख़्शी रघुनाथप्रसाद जी व सेठ रामलाल जी, इन दोनों महाशयों में से कोई एक महाशय सभापति नियत होते । अतः जिस प्रकार स्वामी जी ने जिस विचार से नियमों की प्रथम कापी पर हस्ताक्षर कर दिये थे, उसी विचार से शेष प्रतियों पर भी हस्ताक्षर कर देना चाहिये थे। जब कि उन्हों ने ऐसा जानते हुवे भी शेष साफ़ कापियों पर हस्ताक्षर करने में तीन दिन व्यतीत कर दिये और सेठ रामगोपाल मालानी जी ने आज पांच दिन के उपरान्त हम को यह उत्तर दिया कि अच्युताश्रम जी से शास्त्रार्थ का निर्णय कर लीजिये और मौखिक यह भी कहा कि हम विना मध्यस्थ के शास्त्रार्थ का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते । जब कि पहिले विना मध्यस्थ के शास्त्रार्थ का होना प्रशंसित सेठ जी ने ता० ३० एप्रिल १९०३ की सभा में सर्वसाधारण के सामने स्वीकार कर लिया था और नकार नहीं किया था कि मैं विना मध्यस्थ के कोई प्रबन्ध न करूंगा। इन सब विषयों पर पबलिक ध्यान देकर स्वयं परिणाम निकाल सकती है कि शास्त्रार्थ में वास्तव में स्वामी जी व सेठ जी की ओर से टाल टूल काम में लाई गई, या आर्यसमाज की ओर से ?

शास्त्रार्थ के विषय में पबलिक को सूचित किया जाता है कि जब सेठ जी तो अच्युताश्रम जी पर टालते हैं कि उन से तसफ़िया कर लो और स्वामी

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

साहब न्यायालय में जाकर आज्ञा प्राप्त करना भी दूर किन्तु उस कापी पर हस्ताक्षर करना भी स्वीकार नहीं करते जो कि न्यायालय में दी जायगी। बस प्रत्यक्ष प्रकट है कि दोनों महाशय (अर्थात् स्वामी जी व सेठ जी) शास्त्रार्थ से पीछा करते हैं॥

५ मई १९०३ ई०

कुमारबहादुर सेक्रेटरी

आर्यसमाज हैदराबाद-दक्षिण

यह पत्र ५ मई को वितीर्ण हो चुका। इस पर भी ६ मई और भी व्यतीत हो गई तो समाज ने सब प्रकार श्री अच्युताश्रम स्वामी जी की ओर से शास्त्रार्थ विषयक निराश होने पर निश्चय कर दिया कि ता० ७ को आर्यपथिक निज २ स्थानों को वापिस चले जावें। समाज ने ता० ६ के व्याख्यान के अन्त में भी यह विषय सर्वसाधारण को सुना दिया कि आज समाप्ति का दिन है। और इस विषय का विज्ञापन भी प्रकाशित कर दिया। यथा-

ओ३म्

श्री अच्युताश्रम स्वामी के द्वारा पशुवध विषयक शास्त्रार्थ को टालना

आश्चर्य का विषय है कि जिन कर्मों को हमारे पौराणिक भाई वेदविहित कहते करते वा कराते हैं, जब उन कर्मों के वेदविहित होने का प्रमाण मांगा जाता है तब ऐसी रीति से टालमटोल करते हैं कि जिस से प्रमाण मांगने वाले स्वयं थक कर बैठ रहें वा दोनों दलों में किसी प्रकार का झगड़ा होने से वह विषय सदा के वास्ते टल जाय॥

भारतवर्ष के निवासियों को सामान्यतः और हैदराबाद के निवासियों को विशेषतः ज्ञात है कि गतवर्ष में कृष्णा नदी के तट पर थोड़े से हिंसाप्रिय लोगों ने एक यज्ञ में बड़ी निर्दयता के साथ एक बलहीन पशु का वध किया था और इस निर्दय तथा अवैदिक कर्म को "वैदिकी हिंसा" के नाम से प्रसिद्ध किया था, इस हिंसारूप अवैदिक कर्म के प्रधान अनुमोदक श्री स्वामी अच्युताश्रम जी थे॥

आर्यसमाज हैदराबाद के सदय हृदय वाले सभासद् इस निर्दय और निन्द्य कार्य से ऐसे व्यथित हुए कि तत्क्षण कृष्णातट पर पहुंच कर श्री स्वामी

SGDF

अच्युताश्रम जी के पास इस अभिप्राय का पत्र भेजा कि आप वेदों से पशुवध को सिद्ध कीजिये, अन्यथा पवित्र वेदों के हिंसादि नीच कर्मों से युक्त होने का दोष मत लगाइये, परन्तु "करि फुलेल को आचमन मीठे कहत सराहि—हे गंधी मति अन्धी तव अतर दिखावत काहि" वहां बिचारे वेद और वैदिकों की पुकार को सुनता ही कौन था। जब आर्यों को एक पत्र का उत्तर न मिला तब दूसरा और जब दूसरे का भी उत्तर स्वामी अच्युताश्रम जी से प्राप्त न हुआ, तब आर्यों ने शास्त्रार्थ के वास्ते तीसरा पत्र भेजा। इस बार आर्यों की दृढ़ता और धर्मप्रियता को देख कर स्वामी अच्युताश्रम जी की निद्रा भंग हुई और उन्हों ने इस अभिप्राय का उत्तर भेजा कि हम कार्त्तिक मास में शास्त्रार्थ करेंगे। परन्तु जब स्वामी अच्युताश्रम जी ने वेद और वैदिक ग्रन्थों को देखना आरम्भ किया, तब उन को हिंसा पक्ष शिथिल ज्ञात पड़ने लगा और वह समझने लगे कि वेदों में हिंसा नहीं है। अतएव शास्त्रार्थ को फिर टालने लगे और टालते टालते वैशाख तक टाल लेगये। अन्त में आर्यसमाज हैदराबाद ने उक्त स्वामी जी को फिर शास्त्रार्थ के वास्ते चैलेंज देने आरम्भ किये। अब तो स्वामी अच्युताश्रम जी को "उभयतः पाशारज्जुः" का स्मरण आया अर्थात् एक ओर तो यह ध्यान कि पवित्र वेदों में कहीं भी याज्ञीय हिंसा का प्रमाण नहीं मिलता एवम् संन्यासाश्रम में हिंसा के अनुमोदन का घोर निषेध है (अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम्) दूसरी ओर यह ख़याल कि "अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति" जिस पशुघात को वैदिक कह दिया है उसे क्योंकर वेदविरुद्ध कहूं। इस असमञ्जस में अच्युताश्रम जी पड़े कि विचारों को अपने नैत्यिक कार्य भी भूलगये। अन्त में लाचार होके उक्त स्वामी जी ने स्वीकार किया कि हम २४ एप्रिल १९०३ को शास्त्रार्थ करेंगे। स्वामी अच्युताश्रम जी की प्रतिज्ञानुसार आर्यसमाज हैदराबाद ने अपने वेदज्ञ पण्डितों को निमन्त्रण भेजने आरम्भ किये। तदनुसार श्रीयुत पण्डित तुलसीरामस्वामी, श्रीयुत पण्डित आर्यमुनि जी, श्रीयुत पण्डित पूर्णानन्द जी, श्रीयुत पण्डित रुद्रदत्त जी २३ एप्रिल १९०३ तक हैदराबाद में आकर उपस्थित हुवे। अच्युताश्रमस्वामी जी महाराज को उचित था कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार २३ एप्रिल तक नियम स्थिर करके २४ एप्रिल १९०३ से शास्त्रार्थ आरम्भ करदेते परन्तु वह तो अपने शिथिल स्वभावानुसार २४ को भी शास्त्रार्थ करने को उद्यत न हुवे और फिर टालने

SGDF
Sri Gangeshwar Digital Foundation

लगे, टालते टालते स्वामी अच्युताश्रम जी २९ एप्रिल तक उद्यत न हुवे और न शास्त्रार्थ के नियमों को ही स्वीकार किया तब तो आर्यसमाज से ऐसी सूचना भेजी गई कि यदि आप कल तक नियमों को स्वीकार करके शास्त्रार्थ को उद्यत न होंगे तो हम लोग आप के पराजय को प्रकाशित करदेंगे ॥

यह कैसा स्वीकार है ?

लाचार होके श्री स्वामी अच्युताश्रम जी ने श्रीयुत सेठ रामगोपाल मालाणी जी के नाम से इस अभिप्राय का विज्ञापन प्रकाशित किया कि आज ३० एप्रिल १९०३ को दिन के ४ बजे श्रीमान् राजा ज्ञानगिरि नरसिंहगिरि जी बहादुर की कोठी के मैदान में एक सभा की जायगी। जिस में आर्यसमाजी तथा सनातनसमाजी मिल के शास्त्रार्थ के नियम स्थिर करेंगे। इस विज्ञापन के अनुसार ३० एप्रिल को आर्य लोग उक्त सभा में गये और श्रीयुत सेठ रामलाल जी को सभापति नियत करके शास्त्रार्थ के नियम स्थिर कराये। यद्यपि श्रीयुत स्वामी अच्युताश्रम जी ने एक बार नियमों को स्वीकार करके भी नियम पत्र पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार किया था, तथापि थोड़े से महाशयों के अनुरोध से उन्हों ने नियम पत्र पर हस्ताक्षर किये। कहिये पाठक ! क्या शास्त्रार्थ का स्वीकार करना इसे ही कहते हैं ? क्या अब भी हमारे भोले भाले भाई यही समझे जायंगे कि वेदों में बलहीन बकरों का मारना लिखा है। हम तो समझते हैं कि श्री स्वामी अच्युताश्रम जी की शिथिलता तथा शास्त्रार्थ की अस्वीकृति को अपने नेत्रों से देख और सुन कर हैदराबाद के सम्पूर्ण निवासियों को अवश्य यह निश्चय हो गया होगा कि वेदों में हिंसा नहीं लिखी ॥

क्या साधारण लोग अब भी नहीं समझते ?

कि श्री स्वामी अच्युताश्रम जी की ओर से शास्त्रार्थ टाला गया। आज ५ मई १९०३ है और ३० एप्रिल को शास्त्रार्थ के नियमों को दोनों पक्षों ने स्वीकार करके कहा था कि कल से शास्त्रार्थ आरम्भ होगा और इसी आशा से आर्यसमाज ने दूसरे दिन नियमों की ५ प्रति लिख कर श्री स्वामी अच्युताश्रम जी के पास भेज दीं और पूर्व दिन के नियमानुसार निवेदन कर दिया कि आज ही इन पत्रों में से एक पर हस्ताक्षर करके आर्यसमाज में

तथा पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, मजिस्ट्रेट तथा सभापति महाशय की सेवा में भेज दीजिये, परन्तु उक्त स्वामी जी ने कई पत्र भेजने पर भी २ मई तक न भेजा। अन्त में जब आर्यसमाज ने देखा कि अब तो शास्त्रार्थ के नियम भी हज़म होना चाहते हैं तब फिर स्वामी जी के पास प्रार्थनापत्र भेजा तब स्वामी जी ने परम कृपा करके ३ मई को सन्ध्यासमय नियमपत्र लौटाकर भेजा

अब शास्त्रार्थ की आशा नहीं है

आर्यसमाज के पण्डितों को हैदराबाद में ठहरे हुवे प्रायः १५ दिन से भी अधिक होगये परन्तु अभी तक शास्त्रार्थ नहीं हुवा अतएव अब शास्त्रार्थ का होना असंभव जान पड़ता है, परन्तु हैदराबाद के समस्त धर्मानुरागी आर्यसमाज के उद्योग तथा सन्नद्ध भाव को एवम् श्री स्वामी अच्युताश्रमजी की लापरवाई तथा शिथिलता को देख कर अवश्य समझ गये हैं कि आर्य समाज के पण्डित वेदों से यह सिद्ध करने को तैयार हैं कि यज्ञ में पशु-वध वेदविरुद्ध है परन्तु श्रीयुत स्वामी अच्युताश्रम जी अपने पक्ष को वेद द्वारा सिद्ध करने को तैयार नहीं हैं अतएव अब आर्यसमाज के पण्डितोंके चले जाने पर जो कहेगा कि "आर्यपण्डित शास्त्रार्थ से भाग गये" तो वह सर्वथा मिथ्यावादी समझा जायगा। सेठ रामगोपाल मालानी जी ने कह दिया कि उस दिन के नियमों से शास्त्रार्थ न होगा॥

कुंवरबहादुर

मन्त्री आर्यसमाज हैदराबाद दक्षिण

यह सब कार्य हो चुका था और समाज के पण्डित ७ ता० मई के प्रातः काल जाने को थे और समस्त नगर हैद्राबाद में यह चर्चा फैल रही थी कि अच्युताश्रम स्वामी जी शास्त्रार्थ नहीं करते। इधर अच्युताश्रम स्वामी प्रत्यक्ष में यह प्रकट कर रहे थे कि पुलिस इत्यादि सब प्रबन्ध हो जावे तो हम तो शास्त्रार्थ करने को त्यार हैं, उधर सेठ रामगोपाल मालानी जी और दयही जी शास्त्रार्थ बिना किये ही सनातन धर्म की जयकार की विफलआशालता को जल देरहे थे कि सोचते २ एक नई बात यह उत्पन्न हुई कि श्रीमान् धर्मवान् महाराज शिवराज बहादुर बीच में पड़ कर शास्त्रार्थ करा देना चाहते हैं। यह सुनकर समाज ने पण्डितों के बन्धे बन्धाए बिस्तर खुलवा

SGDF

दिये और पण्डित लोग ४॥ बजे शास्त्रार्थ की प्रतीक्षा में ता० १ को भी ठहर गये। इसी बीच में सेठ रामगोपाल मालानी जी ने पबलिक के आंसू पोंछने को यह विज्ञापन दिया:—

श्री

आर्यसमाज के पण्डितों का शास्त्रार्थ से भागना

विज्ञापन

सब साहबों को मालुम होवे कि आर्यसमाज के श्रीयुत पण्डित तुलसीराम जी, श्रीयुत पण्डित आर्यमुनि, श्रीयुत पंडित पूर्णानंद जी, श्रीयुत पंडित रुद्रदत्त जी शास्त्रार्थ न करके श्रीस्वामी अच्युताश्रम जी पर झूठे मन माने दोष लगाके भागना चाहते थे मगर श्रीमान् धर्मवंत शिवराजा बहादुर महोदयने उन का भागना रोक दिया और उक्त महाराजा साहेबने अपने डेवढ़ीमें उन को शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया है इस लिये भागना न बना अब आप लोग जान लिजिये कि जो बड़ा लंबा हिंदी नोटिस आर्यसमाज ने बिना छापखाने के नाम छपवाकर बांटा है उसे खूब ध्यान से पढ़कर समझ लिजिये कि कौन धर्म सच्चा व पुराना है अपने मुंह मियां मिठू बनना समझदारों का काम नहीं अगर महाराजा साहिब की डेवढी में उन लोगों ने शास्त्रार्थ न किया तो उन के पास कल्पित बातों के सिवाय लोगों को समझाने के लिये और दुसरी कुछ सामग्री नहीं है लंबे चौड़े नोटिस बांटने से पंडित नहीं कहलाता जहां जहां भारत वर्ष में इन लोगों ने शास्त्रार्थ किया वहां सिवाय गपोड़े बाजी के कहीं विद्या में निपुणता नहीं दिखाई अगर आप को इन की सच्ची व्यवस्था देखना है तो श्री वेंकटेश्वर व भारत मित्र व बंगवासी समाचारपत्रों को देखिये तब आप जान जावेंगे कि सनातन धर्म की जय सदा होती आई है और होती रहेगी क्योंकि यह सभा शास्त्र की मर्यादा लेकर काम करती है यही कारण है अंगरेज़ी सरकार व निजाम हैदराबाद दोनो इस की रक्षा कर रहे है व हर तरहकी स्वतंत्रता इस धर्म को मिल रही है जिस से जगत में शांति व राज भक्ति फैलती जाती है यह इस सनातन धर्म का मुख्य उद्देश है॥

आप का

रामगोपाल मालानी

SGDF
Sri Gurudev... Digital Foundation

वक्तव्य-विज्ञापन पढ़ने वालों पर इस थोथी धमकी का क्या प्रभाव होता था। यद्यपि पं० जगन्नाथ जी द्वारा महाराज धर्मशत्रु शिवराज बहादुर के नाम से यह कहावत आई थी कि समाज के पण्डित ठहरें, जावें नहीं, हम शास्त्रार्थ करादेंगे। ईश्वर जाने यह कहावत इन्हीं शब्दों और भाव को लेकर महाराज से आई थी, वा क्या? परन्तु जब समाज ने पत्र द्वारा महाराज का आशय जानना चाहा और पत्र लिखा तथा अगले दिन भर प्रतीक्षा करते हुवे भी कोई उत्तर न मिला, और हम को तो प्रथम ही आशा न थी पुनः वही निराशता आई और अन्ततः समाज को निम्न लिखित घोषणा प्रकाशित करनी पड़ी। उर्दू से नागरी में। यथा—

ओ३म्

आर्यसमाज व स्वामी अच्युताश्रम जी के मध्य में शास्त्रार्थ का परिणाम

सर्वसाधारण को विदित हो कि लग भग एक साल से इस शास्त्रार्थ की चर्चा हैदराबाद में विशेषतया और भारतवर्ष में सामान्यतया अधिक कर फैल रही थी। अन्त में पक्ष प्रतिपक्ष की प्रसन्नता से २४ एप्रिल १९०३ ई० शास्त्रार्थ के लिये नियत हुवे। तदोपरान्त जैसा कि हम प्रथम ही नोटिस में प्रकाशित कर चुके हैं, श्रीमान् अच्युताश्रम जी की ओर से शास्त्रार्थ के नियम स्वीकार करने में बराबर टालटूल हुई। इसी अवसर में सेठ रामगोपाल लालाजी जी ने एक सभा ता० ३० एप्रिल १९०३ को होना नियत करके किसी न किसी प्रकार इस शास्त्रार्थ को उस सीमा तक पहुंचाया कि शास्त्रार्थ के नियमों पर श्री स्वामी अच्युताश्रम जी के हस्ताक्षर होगये, और सेठ जी ने प्रेसीडेण्ट आर्यसमाज के साथ मिल कर मैजिस्ट्रेट से शास्त्रार्थ की आज्ञा प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की; सब को आशा हुई कि अब शास्त्रार्थ होने में कोई सन्देह शेष नहीं रहा, परन्तु भेद तो कुछ और ही था। श्री स्वामी अच्युताश्रम जी और दूसरी स्वामी जी को यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि किसी तरह शास्त्रार्थ के नियमों में (जो प्रथम स्वीकार कर चुके थे) कोई न्यूनाधिकता हो और जिस प्रकार सम्भव हो, टालटूल से स्वीकृत नियमानुसार शास्त्रार्थ न करना पड़े, और यदि आर्यसमाज किन्हीं नये नियमों के नियत

SGDF

करने पर कटिबद्ध हो जावे तो अवश्य ही परिणाम यह होगा कि स्वीकृत नियम असिद्ध होजावेंगे । नये नियमों पर बात छिड़जाने से शास्त्रार्थ सहज में टल जावेगा। अतः उन्हों ने तीन दिन तक तो शेष नियमों की प्रतियों पर हस्ताक्षर नहीं किये और फिर तीसरे दिन यह कहा कि स्वीकृत प्रेसीडेन्ट का नियत होगा शेष रह जाने के कारण हमने हस्ताक्षर नहीं किये । स्वामी जी का यह उज्र किसी तरह ठीक नहीं था, क्योंकि जिस प्रकार नियमों की एक प्रति पर सभा के मध्य में स्वामी जी हस्ताक्षर कर चुके तो उन्ही नियमों की शेष प्रतियों पर हस्ताक्षर न करना क्या अभिप्राय रखता है। इस के अतिरिक्त कि शास्त्रार्थ में ढील हो, नियमों पर चल न सकें, आज्ञा प्राप्त करने में देर हो दूसरों का अमूल्य समय नष्ट हो और व्यर्थ नवीन नियमों का झमेला पड़कर शास्त्रार्थ हट जावे। दूसरी ओर सेठ रामगोपाल मालानी साहिब ने स्पष्ट नकार कर दिया कि विना मध्यस्थ के उपस्थित नियमों पर शास्त्रार्थ का कोई प्रबन्ध न करेंगे । यदि आवश्यकता होतो अच्युताश्रम जी से लेकर लीजिये। यह बात होही रही थी कि तीसरी बात और पैदा की गई कि ता० ६ मई की शाम को जब कि शास्त्रार्थ से निराश हो कर हमारे पण्डित लौट जाने को थे, पं० जगन्नाथ जी सनातनी भाई एक मौखिक संदेशा महाराजा शिव राज धर्मवन्त बहादुर का लेकर समाज में पधारे और कहा कि महाराज कहते हैं कि दोनो पक्ष वाले हमारे यहां आकर शास्त्रार्थ करें जिस के उत्तर में निम्न लिखित चिट्ठी महाराज की सेवा में आर्यसमाज हैदराबाद की ओर से पं० जगन्नाथ जी द्वारा भेजी गई :—

दफ़्तर आर्यसमाज हैदराबाद दक्षिण ता० ६ मई १९०३ ई०
समय ९ बजे रात्रि

श्रीमान् राजा राजमान महाराजा शिवराज धर्मवन्त बहादुर नमस्ते आज शास्त्रार्थ सम्बन्धी कार्यवाही समाप्त समझी गई थी, परन्तु श्रीमान् पं० जगन्नाथ जी के मुख से साढ़ेसात बजे रात्रि के (जब कि श्रीमान् पं० तुलसी राम जी स्वामी का अन्तिम व्याख्यान समाज मन्दिर में हो रहा था) यह ज्ञात हुवा कि आप बीच में पड़कर शास्त्रार्थ करा देने का कष्ट उठाने पर उद्यत हैं, अतः निम्नलिखित बातें निवेदित की जाती हैं—

SGDF Sri Gurgaon Digital Foundation

१-शास्त्रार्थ अधिक से अधिक कल ७ मई १९०३ साढ़े चार ४॥ बजे सायं से प्रारम्भ होजाना चाहिये नहीं तो कोई अवसर नहीं रहेगा ॥

२-शास्त्रार्थ रेज़िडेन्सी प्रान्त में होना चाहिये ॥

३-शास्त्रार्थ उन्हीं नियमों का पालन करते हुए होना चाहिये जो ता० ३० एप्रिल १९०३ को नियत हो चुके हैं और जिस पर दोनों पक्ष के हस्ताक्षर होचुके हैं ॥

४-मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेने के लिये आप की ओर से कोई पुरुष उद्यत किया जावे उन के साथ समाज की ओर से केशवराव जी रहेंगे, जिस समय सूचनादें। उपरोक्त रीत्यनुसार यदि आप कष्ट उठा कर शास्त्रार्थ कराना चाहते हैं तो कृपा करके आठ बजे प्रातः काल तक सूचित कीजिये। इस की एक प्रति श्री अच्युताश्रम जी की सेवा में भेजी है। ओंशम् ॥

कुमारबहादुर मन्त्री आ० स०

हैदराबाद दक्षिण

इस चिट्ठी का उत्तर अबतक प्राप्त नहीं हुआ और न इस के सुनते का जवाब श्रीस्वामी अच्युताश्रम जी से प्राप्त हुआ। इतनेही में ७ मई १९०३ समय ३ बजे सायं एक चौथी बात विदित हुई कि स्वामी शङ्करहरिहर तीर्थ जी ने एक चिट्ठी * उर्दू अक्षरों में अपने हस्ताक्षर करके भेजी कि महाराज शिवराज धर्मवन्त बहादुर का उत्तर इस समय तक नहीं आया,

* नक़लपत्रानुवाद—

ओ३म्

७ मई १९०३ साढ़ेचार बजे शाम

श्रीमान् कुंवरबहादुर सैक्रेटरी आर्यसमाज हैदराबाद दक्षिण।

विदित हो कि अब तक धर्मवन्त महाराज शिवराज बहादुर के यहां से ८ बजे प्रातः तक कोई उत्तर नहीं आया। अतः आप को सूचना नहीं दी गई। अब अगर आप को गणपतिराय साहब डाक्टर बोलारम जी को मध्यस्थ करना स्वीकार है तो हमारी रज़ामन्दी है और डाक्टर साहब रज़ामन्दी प्रकाशित करते हैं। आप अपनी सम्मति लिखें ॥

शंकरहरिहर तीर्थ

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

यदि आप चाहें तो श्री डाक्टर गणपतिराय साहब को मध्यस्थ स्वीकार करके शास्त्रार्थ करें। इस चिट्ठी का अभिप्राय इस से अधिक और क्या होसकता है कि जब कोई राह स्वीकृत नियमों से बचने में लाभदायक नहीं हुई तो यही यत्न किया जावे कि जिस से मध्यस्थ का विवाद फिर प्रारम्भ होजावे, और शास्त्रार्थ न हो और न स्पष्टया नकार करना पड़े कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते। इस चिट्ठी का उत्तर आर्यसमाज की ओर से जाने नहीं पाया कि एक पांचवी बात और उत्पन्न हुई। एक महाशय ने ८ मई को ८ बजे रात्री को आकर कहा कि स्वामी अच्युताश्रम जी महाराज लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। उत्तर में निवेदन किया गया कि उनका लेख लाइये। अन्त में इस समय तक कोई पत्र नहीं आया और शास्त्रार्थ के पांचों बचावों से श्रीस्वीमी अच्युताश्रम जी हट गये, और २४ एप्रिल १९०३ के स्थान में ८ मई १९०३ भी व्यतीत हो गई। अतः लाचार आर्यसमाज हैदराबाद को अपने पण्डितों को लौटाना पड़ा॥

अब सब महाशय इन सब विषयों पर विचार करके परिणाम निकाल सकते हैं कि यदि वेदों में यज्ञसंबन्धी पशुबध (पशुओं का निर्दयता से मारना) लिखा होता तो जिस शास्त्रार्थ के लिये श्री स्वामी अच्युताश्रम जी आठ मास से उत्साह प्रकट कर रहे थे, क्या इस समय किसी तरह शास्त्रार्थ नहीं कर सकते? सर्वसाधारण को तो निश्चय रखना चाहिये कि वेद भगवान् जिन पर आर्यधर्म का आश्रय है, इस प्रकार की शिक्षा (यज्ञ में पशुबध इत्यादि) से रहित और पवित्र हैं और उन में अहिंसा ही परमधर्म माना गया है। परमेश्वर मनुष्यमात्र को शक्ति दे कि पवित्र आर्यधर्म पर पूरी श्रद्धा और विश्वास करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष के भागी हों। ओ३म्

केशवराव प्रधान आर्यसमाज
हैदराबाद दक्षिण
९ मै १९०३ ई०

धर्मप्रचार

शास्त्रार्थ न हुवा तो न सही, परन्तु हैद्राबाद में पं० आर्यमुनि जी, पं० रुद्रदत्त जी, पं० तुलसीराम स्वामी ने बारी बारी से ११ व्याख्यान दिये, जिन से आर्यधर्म की चर्चा समस्त नगर में भलेप्रकार हो गई॥

SGDF Sri Gangeshwari Digital Foundation

आर्यसमाज हैदराबाद में १२ सभासद बढ़े। उच्च कर्मचारी और सभ्य लोगों ने वैदिधर्म का महत्त्व जाना, और सब से लाभ यह हुवा कि:-

" दक्षिण प्रान्त में आगे को कोई सनातनी शास्त्रार्थ का नाम न लेगा"

और आर्य पण्डितों को यह भी सन्देह न रहा कि दक्षिण देशस्थ पौराणिक पण्डित जो पाठमात्र के वैदिक होने से अपने को वैदिक वा वेदवेत्तापने का गर्व करते हैं, कुछ वेदार्थ में विशेषज्ञ हों। प्रत्युत अनुभव के पीछे यह ज्ञात हुवा कि चाहें सस्वर वेद पाठ के अभ्यासी न हों, परन्तु देशस्थ पण्डितों में बहुत से हैं जो दक्षिणियों की अपेक्षा वेदार्थ अधिक जानते हैं। हैदराबाद शास्त्रार्थ के कारण ४। ५ दक्षिणी पण्डितों की वेदार्थाऽनभिज्ञता का तो पता लग गया। इसी से शेष साधारणों का भी परिचय जानिये। एक और बड़ा लाभ-

श्री १०८ मान् महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर महामन्त्री निज़ाम सरकार

की सेवा में जनाब दीवान गणपतिराय साहब ने मुलाक़ात के समय आर्यधर्म की चर्चा चलाई। महाराजा ने प्रसन्नता पूर्वक शास्त्रार्थ के लिये आये हुवे आर्य पण्डितों से मिलना स्वीकार किया। तदनुसार सब पण्डित मिलने गये, किन्तु यदृच्छा से उस दिन कार्यविशेष होने से महाराज न मिले परन्तु उस से अगले दिन मिलने का वादा किया। क्योंकि आर्य पण्डितों को अधिक अवकाश न था, अतः अन्य तो सब निज२ स्थान को पधार गये परन्तु श्रीमान् दीवान गणपतिराय साहब के सविशेष अनुरोध से पं० आर्यमुनि जी ठहर गये और अगले दिन ता० ९। ५। ०३, को महाराजा साहब से मिले:-

वार्त्तालाप

पं० आर्य मुनि जी ता० ९ मई १९०३ ई० को महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर साहब मदारुलमुहाम हैदराबाद दक्षिण से साढ़े ५॥ बजे शाम को मिले एक घण्टा दश मिनट तक वार्त्तालाप होता रहा:—

१-प्रथम मिलते ही महाराज ने यह पूछा कि आर्यसमाज और सनातन धर्मसभा में क्या अन्तर है, बतलाया गया कि आर्यसमाज परमेश्वर को सजातीय विजातीय स्वगतभेदशून्य (वाहिद ला शरीक) मानता है और

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

हिन्दू ऐसा नहीं मानते । इसे उन्हों ने बहुत पसन्द किया । २—तदुपरान्त तीर्थ विषय पर चर्चा हुई । बतलाया गया कि ऋषियों मुनियों ने जो स्वच्छ स्थान अपने निवास भजनादि के निमित्त नियत किये, वे स्थान जल और वायु शुद्ध होने और ऋषि मुनियों के सत्सङ्ग विद्यालाभादि के कारण तीर्थ कहलाने लगे, अब इन वार्त्ताओं पर तो लोगों की दृष्टि बिलकुल नहीं रही केवल स्थान जल आदि को ही तीर्थ मानने लगे हैं और केवल वहां जाना ही मुक्तिदायक समझने लगे हैं । उस को भी उन्होंने पसन्द किया और आर्यसमाज की बहुत प्रशंसा की । ३—फिर महाराजा बहादुर ने स्वयं स्त्रीशिक्षा का प्रसङ्ग चलाया और अपने को उस का (स्त्रीशिक्षा का) सहायक प्रकट किया । ४—यज्ञ में पशुवध से उन्हों ने बहुत घृणा की और कहा कि जिन ग्रन्थों में ऐसी निर्दयता से पशुवध करने का वर्णन है वह ईश्वरीय कैसे हो सकते हैं । ५— शुद्धि के विषय में आर्यसमाज का नियम सुन कर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि हिन्दू जाति इस ही लिये निर्बल होगई है कि वह अपने में से लोगों को निकाल तो देती है, परन्तु मिलाती नहीं । इस नियम में उन्हों ने सिक्ख जाति की प्रशंसा की कि हिन्दू मात्र के मिलाने में घृणा नहीं करते । ६—समाप्ति पर पण्डित जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका बाबू निहालसिंह अनुवादित और मनुस्मृति भाषानुवादित पं० तुलसीरामस्वामी और आर्यसमाज के नियम अंग्रेज़ी में आप को भेट दिये, आप ने धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किये और उन को ध्यानपूर्वक देरतक पढ़ा और आर्यसमाज की प्रशंसा की । फिर सभा विसर्जन हुई ॥

पाठकगण ! एक ऐसे उच्चपतिष्ठ महाराजा के कर्णगोचर वैदिक धर्मोपदेश होना भी इस अभूत शास्त्रार्थ का ही उपकार है । इस प्रकार विचारा जावे तो इस संग्रह का बहुत बड़ा लाभ हुआ ॥

एक और लाभ यह हुवा कि भारत के भिन्न २ प्रान्तीय समाजों ने जो अनुमान(११००)के लग भग चन्दे की सहायता दी उस से सिद्ध हुआ कि आर्यसमाजों मात्र में वैदिकधर्म की रक्षा और प्रचार निमित्त एक अच्छी सानुभूति है ॥

पाठकवर्ग ! जिस हैदराबाद के याज्ञीय पशुवध विषयक शास्त्रार्थ के अवसर की आप चिर काल से प्रतीक्षा कर रहे थे वह इस प्रकार बिना शास्त्रार्थ हुवे व्यतीत होगया ॥

SGDF Sri Gangadhar Digital Foundation

गुलबर्गा में प्रचार

हैदराबाद से चल कर एक दिन गुलबर्गा में पं० श्री रुद्रदत्त जी, पं० श्री पूर्णानन्द जी, तुलसीराम स्वामी तीनों उपदेशक ठहरे। ता० ९ की रात्रि में उपदेश हुआ। इस क़सबे के कई भद्रपुरुष आर्यधर्म से प्रेम रखते हैं। उद्योग करने से यहां आर्यसमाज स्थापित हो सकता है। आशा है कि इस हैदराबादीय शास्त्रार्थ के परिणाम का भी आस पास के स्थानों पर उत्तम प्रभाव होगा॥

श्री स्वामीअच्युताश्रम जी की चिट्ठी

जो इस शास्त्रार्थ से कई मास पूर्व आर्यसमाज हैदराबाद में आई थी। इस को उत्तर सहित यहां पाठकों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जाता है। पाठकवर्ग ने स्वामी जी की योग्यता का परिचय उन की छोटी २ दो तीन चिट्ठियों से तो पाभी लिया है जो कि ऊपर छप चुकी हैं, परन्तु वक्ष्यमाण चिट्ठी से जो उन्होंने अपने २। ३ मास के परिश्रम से रची है, उन की सिद्धान्तसम्बन्धिनी योग्यता और पशुवधसिद्धि के शास्त्रीय बल का भी परिचय चिट्ठी देखने से पाठकों को हो जायगा॥

चिट्ठी

श्री सुदर्शनसहायः

श्री गणेशायनमः। केचिदत्र यागीयहिंसाविषये विप्रतिपद्यन्ते। विप्रतिपत्तिश्च, यागीयहिंसाविधिबोध्यानवावेदबोध्यानवामन्त्रबोध्यानवेति अत्रविधिकोटिर्वैदिकानां निषेधकोटिस्तुब्राह्मणस्यवेदत्वमनङ्गीकुर्वतांदयानन्दीयानाम्। अत्र हिंसात्वमात्रं न पक्षतावच्छेदकं रागप्रयुक्तहिंसादौ बाधात् यागीयेति विशेषणं रागश्च प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्येष्टसाधनत्वप्रकारकज्ञानजन्येच्छा सा च चिकीर्षाद्वारा पुरुषं प्रवर्तयति। नैवं स्वर्गविषयणी प्रवृत्तिस्तादृशेच्छा जन्या=

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

वैशेष्यानुपादाने सिद्धसाधनं=लौकिकवाक्यबोध्यत्व व्या-
वृत्त्यैविधिरितिसाध्यविशेषणम्=एवंविप्रतिपत्तौयागीयहिं-
सावेदबोध्यायागाङ्गतयाक्रियमाणत्वात् सोमाभिषववत्योय-
दङ्गत्वेनक्रियतेसतद्बोधकवेदबोध्यइतिव्याप्तेर्वेदबोध्यत्वसिद्धिः=
नापिविशेषणासिद्धिः= उक्ताहिंसाअङ्गम्प्रधानक्रियाप्रयुक्त-
क्रियात्वात्प्रयाजवत्= अत्रवायव्यंश्वेतमालभेतेतियागोवि-
हितः स च देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मकोयागो भवति स
च त्यागः क्वचिद्धोमपूर्वकः क्वचिदुत्सर्जनपूर्वकश्च यत्र होम
पूर्वकस्तत्र पशुरूपद्रव्यस्यान्तरेण विशसनं न घटत इति
विशसनमपेक्षते ॥ अतोस्याहिंसायाः प्रधानरूपयागक्रिया
प्रत्युक्तत्वात् न हेत्वसिद्धिः । नह्यत्रपशोरेवहोमः ॥ वपा-
होमादिश्रवणानुपपत्तेः॥ जातवेदो * वपयेत्यृग्घि वपाहोम
माचष्टे ॥ हृदयस्याग्रेवद्यतीति हृदयावदानम् । सच पशु-
संज्ञपनंविनावपोत्खेदनासंभवात्कथंसिद्ध्यतिअवदानं च प-
शोर्हवनेपि सिद्धं न समीहितमितिहिंसाया अनतिवृत्तिः हिं-
सा हि नाम सा यया क्रियया प्राणोवियुज्यते ॥ पशोर्होमे-
पिप्राणोवियुज्यतएव । यद्यप्यत्रसंहितायां पशुपदंनास्तीति
वक्तुं शक्नोति ॥ वसन्तायकपिञ्जलानालभते इतिशुक्लयजुः
संहितायां कपिञ्जलालम्भनंविहितम् । कपिञ्जलपदंहिप्राणि
विशेषं वदति आहचजैमिनिः ११ अ० प्र० ८ अ० दृष्टः प्रयोग

* तृतीयाष्टके प्रथमप्रश्ने जातवेदोवपयागच्छदेवान् त्वंꣳहि होता प्रथमो बभूथ ॥ घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व स्वाहा । हे जातवेदः त्वं वपया देवान्प्रति गच्छ हि यस्मात् त्वं प्रथमो होता बभूथ त्वं घृतेन घृतवपया देवानां तनुवो वर्धयस्व स्वाहा कृतं हविरदन्तु देवाः कृतꣳहविरदन्तु देवाः ॥

इतिचेदिति॥छागोवामन्त्रवर्णादितिसूत्रेण १२ अध्यायस्थेन छागस्यवपायामेदसोनुब्रूहीतिमन्त्रेणछागसम्बन्धिवपारूप मेदोविशेषस्यग्रहणं प्रतिपाद्यते॥ अतोमन्त्रेणापिहिंसोक्ते-तिहिंसा यागांगम्=माहिंस्यात् सर्वाभूतानीति वचनं सामान्यतोहिंसानिषेधकं न विशेषतः हिंसाविधिश्च विशेषविषयः विरोधे उत्सर्गापवादन्यायआश्रयणीयःयस्तु मन्त्रवर्णः ओषधे त्रायस्वेतिस्वधितेमैनꣳहिꣳसीरिति च।सच हे ओषधे उपाकरणद्वितीयबर्हे एनं पशुं त्रायस्व छेदनार्थं रक्षस्वेत्यर्थः प्रकरणात्बर्हिषमन्तर्धाय छेदनं हि रक्षणं। अनन्तर्धाय छेदनेहि पशुर्नरक्षितस्स्यात् देवार्हं न स्यादित्यर्थः॥ हे स्वधिते एनं पशुं मनुष्यवन्माहिंसीरित्यर्थः तथा च ब्राह्मणं तैत्तिरीयसंहितायां षष्ठकाण्डे तृतीयप्रपाठके नवमानुवाके ओषधे त्रायस्वैनꣳस्वधिते मैनꣳहिꣳसीरित्याह वज्रोवै स्वधितिरसांत्यै॥पार्श्वत आच्छ्यति मध्यतोहिमनुष्या आच्छ्यन्तितिरश्चीनमाच्छ्यत्यनुचीनꣳहिमनुष्याआच्छ्यन्ति व्यावृत्याइति॥नायमपिमन्त्रोहिंसाभावंबोधयतियदितद्भावं बोधयेत् यूपच्छेदनेन विनियुंज्याद्विनियोगं चाहापस्तम्बः ओषधे त्रायस्वैनमित्यूर्ध्वाग्रं दर्भमन्तर्धाय स्वधिते मैनꣳ हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति। तेन दर्भद्वयमनन्तर्धाय माछिन्द्यात् किन्तु अन्तर्धाय छिन्द्यात् अन्यथा आव्रश्चन होमविधानं न कुर्यात्। प्रकरणपाठश्च व्यर्थः स्यात् फलवदर्थज्ञानोद्देश्येनाध्ययनं विहितं फलवत्वं चार्थज्ञानस्य क्रतुद्वारकं विद्वान्यजेतेत्यादिनार्थज्ञानस्य यागांगत्वाव-

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

गमात्॥अथ मन्त्रार्थविरुद्धं ब्राह्मणमप्रमाणमिति न वाच्यं= संहितान्तर्गत्वात् अथ संहितायामपि कश्चिद्भागोऽप्रमाण-मिति चेत् न मन्त्रभागस्यापि तथात्वेकाक्षतिः मम तु यथा श्रुते विरोधेपि उक्तरीत्यैकवाक्यतोपपत्तेर्नक्षतिः ॥ मन्त्र-व्याख्यारूपस्य ब्राह्मणस्याप्रामाण्ये त्वद्व्याख्यानस्यापि प्रामाण्यं चिन्त्यं । अस्तु तत् मन्त्रोप्युक्तार्थ एव जातवेदो वपयेतिमन्त्रेणवपाश्रपणान्यथानुपपत्त्या हिंसा क्षेपणात् तस्मात् वेदबोध्या हिंसेति सिद्धं = = =

योहिहिंसां वैधीं न मनुते सपृष्टव्यः किमधर्म इति न विधिबोध्योतनिषिद्धत्वात् नाद्यःहिंसाया अधर्मत्वे माना-भावात् अधर्मत्वं च धर्मविरुद्धत्वं तच्चवेदविहितभिन्नत्वं वेदविहितत्वं च लिङादिपदबोध्यनियोगविषयत्वं अ-ग्नीषोमीयं पशुमालभेत इति आलम्भननियोगस्य विष-यत्वात् धर्म एव । एवं वसन्ताय कपिञ्जलानालभत इत्य-त्रापि । आलभतिश्च कूटादिप्रायश्चित्तपूर्वकोपाकरणरश-नापरिव्ययपणयूपनियोजनप्रोक्षणस्रुच्याघारानन्तरकालिक समंजनपर्यग्नीकरणवपाश्रपणान्वारम्भणाधिगुप्रैषसमका-लशामित्रानुनयनाधस्तात् बर्हिरुपासनप्रत्यङ्मुखावस्थाप-नवाशादिप्रायश्चित्तसंज्ञप्तहोमरशनाविमोकांगाप्यायनवपो-त्कृन्तनतत्प्रतितपनहोमतदुद्धारणाभिघारणैकादशावदानो-द्धरणशृतप्रश्नप्रतिवचनहविर्गुदकाण्डजाघनीहोमादिक्रिया-कलापः । अत्र यस्य कस्यचिल्लोपेपि प्रायश्चित्तविधानात्

सर्वमिदमालम्भनपदवाच्यम् । अतो हिंसा वेदविहितेति नाधर्मत्वं । नापि निषिद्धा निषेधवचनाभावात् माहिंसीरिति अर्थान्तरमित्युक्तम्=माहिंस्यात्सर्वा भूतानीति न संहितायामस्ति न ब्राह्मणे प्रमाणभावं कथयं ॥ मूलवेदविरोधाभावात् प्रमाणमिति चेत् । न मूल वेदस्यैवाभावं पश्यतु भवान् यदि मूलवेदोदयानन्दोक्तमेवार्थं ब्रूयात् तर्ह्यविरोधः स एव न प्रकरणविरोधात्। प्रकरणं च पाशुकमन्यथैनमितिपदं पशुं कथं वदेत् वदति च भवान् एनं पशुमिति प्रकरणं नियामकं नो चेत् एनं यजमानमिति घटमिति वा किमिति न ब्रूयात् । अतः प्रकरणेनैव पशुं ब्रवीति तथा च न मां हिंसीरिति यथा श्रुतएवार्थो मन्त्रः किञ्च सन्तेप्राणोवायुना गच्छतां स यजत्रैरङ्गानि इतिमन्त्रौकथंसंगच्छेताम् आध्यात्मिकवायुःप्राणोबाह्यवायुना एकीभवतु पश्वङ्गानि यज्ञैस्सहगच्छतां यज्ञसाधनतांयात्विवतितदर्थः प्राणागमने कथमेतदुपपद्यताम् तस्मात्प्रकरणनियमोऽवश्यं वक्तव्यः हिंसापिउपेयेति कथं हिंसाधर्मोनिषिद्धोवा किञ्च भूतमात्रहिंसावर्ज्यैति हिंसाब्रवीति तथा च कथं ते घृतादिना होमसिद्धिः अन्तरेण दोहनं पयोन निस्सरति दोहनं च मातुर्वत्सस्य च दुःखं जनयति दुःखदापूर्वजननानुकूलव्यापारोहिहिंसा। पञ्चसूनागृहस्थस्येतिवचनं कण्डिन्यादीनांहिंसात्वं प्रतिपादयति यदि तत्र प्राणिवधएवाभिप्रेतइति मतं तदस्तु अनुमोदकस्य हिंसकत्वव्यपदेशः उक्तव्यापारस्यहिंसात्वं गमयति तथा च घृतादिसंपत्तिर्हिंसामूलेति वैदिककर्ममात्रस्य लोपः अतः सिद्धा हिंसा वेदबोध्येति ॥

यजमानस्यपशून्पाहीति श्रुतिर्नयज्ञाङ्गपशून्पाहीतिपदं बोधयतिकिंतुअनङ्गभूतान् गृहेविद्यमानान् प्रकरणं चान्यदीयं दर्शपूर्णमासौहि अनुष्ठेयतयोपदिश्येते तत्रपशोरप्रसक्तिः कस्य रक्षणं प्रार्थ्यम् अतोनेयं तवेष्टं श्रुतिःसाधयति—

बैल्वः खादिरोवा यूपस्स्यात् यूपश्च नाम पश्वनुबंधार्थमुपदीयते शक्यंचानेनकंचिदेवकाष्ठमुच्छ्रित्यानुच्छ्रित्य वा पशुरनुबन्धुं तत्रनियमः क्रियतइति यदिदमार्यसमाजवचनं तन्न सुन्दरम् = नियमफलानुपलब्धेः नियमोहिपक्षे प्राप्तस्यपरिपूरणम् ॥ विनापि अवहननं साधनांतरं तण्डुलनिष्पत्तौ प्राप्नोति तदाऽप्राप्तिरवहननस्यतत्पूरणं करोतिविधिः नहिपशुबन्धनसाधने यूपे खादिरत्वमप्राप्तं येन पूर्येत ॥ अथ यूपं तक्षति यूपमष्टास्त्रीकरोतीति वचनेन तक्षणसंस्कारविशिष्टकाष्ठविशेषःयूपइतिज्ञातेकाष्ठविशेष इतिजिज्ञासायांयःकोपिकाष्ठविशेषइति प्राप्तः तदानेन खादिरत्वं नियम्यतइतियदि ब्रूयात् तदास्तु नाम नियमः"अथापियत्तात्पर्यवर्णनम् क्षीराद्यादानार्थम् यज्ञे पशुबंधनं लोकवत् तेन सुरक्षिताः पयांसि दास्यंति तैश्च घृतोत्पत्त्या यागस्सिद्ध्यतीति तत्र सुखमेधते" एतदर्थं यूपानपेक्षणात् लोकत एव प्राप्तेः यूपे पशुं बध्नातीति व्यर्थ एवविधिः अतएव नियमोपि व्यर्थः अपूर्वाभावात् ॥

यदाह पशुबन्धनार्थं यूपइत्युक्त्वा गौरनुबन्ध्योजोग्नीषोमीय इति योदिति सूत्रे उदाहृतं तेन अग्निदेवतायास्सोमदेवतायाश्च गोरजस्य च बन्धनं गम्यते न हननमिति तदसत् नहीदमनुबन्ध्य इति पदं बंधनं वदति किन्तु अवभृथोत्तरं क्रियमाणं

ಪುಸ್ತಕದ ಸಂಖ್ಯೆ.........

पाशुकं कर्मवक्ति अग्नीषोमीयः सवनीयोनुबन्ध्य इतित्रयः पशवः तत्राग्नीषोमीयोजः गौरनुबन्ध्य इति तत्रानुबन्ध्यपदं यदि बंधनं ब्रूयात् गौरितिपदं व्यर्थम्। नह्यग्नीषोमीयोजोनुबन्ध्य इत्यन्वये गौरिति पदं तत्रान्वेतुयुक्तं अजोहितत्रान्वितः तेनावरुद्धश्च कथं गवि आकांक्षाफलाभावश्च यच्चाह शन्नो अस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे इति श्रुतिर्हिंसानिवर्त्तिकेति तन्न। अयं च मन्त्रः यज्ञानंगतयाक्लृप्तानां द्विपदानां सेवकानां च चतुष्पदानां पश्वादीनां कुशलं यजमानप्रार्थ्यं बोधयति नतुयज्ञांगतया क्लृप्तानां पशूनामहिंसनं। यदपि पशोः सशरीरस्य सुखमुपलभ्यते मृते कथं सुखं शरीराभावादिति न चास्त्यनुमानमशरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति तदपि न, यदिदं वात्स्यायनसम्मतं मतं मृतशरीरो न प्राप्नुयात् पुण्यफलं पारलौकिकं सुखं नाकांक्षेत् कृतहान्यकृताभ्यागमदोषं देहात्मवादे वदन् कथं नांगीकुर्यात् पारलौकिकं सुखं तथा चैतच्छरीरे गते शरीरान्तरेण शरीरं भुनक्तीति हृदयं तथैव अजस्य शरीते मृते शरीरान्तरेण पुण्यफलं भुनक्ति पशुः। योपि अध्वरशब्दो न हिंसावाचकः यज्ञश्चाध्वरःकथं तत्र हिंसेति सोपिननञ्नाभावमाचष्टेकिं त्वल्पार्थं अल्पा हिंसा यत्र सोध्वरः हिंसायामल्पत्वं च बलवदनिष्टाननुबन्धित्वं ध्वरोहिंसारागप्राप्तोनास्तीति वाऽध्वरः अध्वरशब्दश्च यज्ञे न यौगिकः किन्तु रूढः प्रवीण कुशलादिवत्। तथा च हिंसावतियागेऽयं शब्दः प्रवृत्तः हिंसाभावमेवाह—नहि वैधी हिंसा हिंसा भवति यद्धि शास्त्रं हिंसादोष इतिप्रत्यपादि तदेव दोषाभावं प्रतिपादयति शास्त्रोक्ते को विवादः तत्रैव विवादः यत्र न शास्त्रमस्ति अतएव राज्ञां

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

शिक्षणरक्षणयोरधिकृतानां हन्तुर्हननदोष इत्याहस्म शास्त्रं तन्न्यायोत्रयोज्यतामिति । अतएव जैमिनिः मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषादिति तृतीयाष्टमे तरसाः पुरोडाशास्सवनीया भवन्तीतयाहस्म शमिता च शब्दभेदात् इति तृतीयसप्तमे शमितुर्ऋत्विगन्यत्वमुक्तमेतेन यागीयहिंसा जैमिन्यादिसम्मता । यदि भवान्नांगीकरोति जैमिन्यादि सूत्राणामप्रामाण्यमुपेयात् वेदार्थनिर्णयार्थमपि सूत्राणां प्रामाण्यमिति लेखनं व्यर्थं स्यात्सूत्रप्रामाण्ये गतं ते मतं=

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषं ।

मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यत इति । तदपि न हिंसाऽधर्म इति ब्रूते । नहि विहिता साऽधर्मो भवितुमर्हति अतएव मोहादारभ्यत इत्युक्तं नहि शास्त्रप्रयुक्ता प्रवृत्तिः मोहमूला न वा शास्त्रमधर्मं पुरुषं प्रवर्त्तयति तस्मात् सम्प्रदायावेदनमूलमिदं लेखनम्=

यान्यपि—बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमितिवैवैदिकीश्रुतिः । अज संज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ नैषधर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुरिति महाभारतानुशासिकवचनानि तान्यपि उपरिचरवसुवाक्येन ॥ ३३२ ॥ निषिद्धानि—देवानांतु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् । छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदेति । यदपि—सुरा मत्स्या मधुमांसमासवं कृशरौदनम् । धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितमिति भारतवचनं कामकृतनिन्दापरम् । अत्रैतद्धृदयं धर्मव्याधोहि

ञ्जलिमुपदिशन् आत्मज्ञानसाधनाऽहिंसादिधर्मं प्रशंसन्वैदिक कर्म कामकृतं कर्म चानिन्दत् अहिंसाप्राशस्त्यार्थं न हि निन्देति न्यायात् अहिंसां स्तौति वस्तुतस्तु एकवाक्यतया भारतादि प्रामाण्यानङ्गीकारात् न भारतादिवचनेनेष्टसिद्धिस्ते = वैदिकाभ्युपगतार्थस्य त्वयानभ्युपगमात् यदि भवानस्मदुक्तमर्थमुपैति कथं मन्मतखण्डनम् अतस्ते पामरजनमोहकरमेव वचनमिति ॥

यदपि विरोधे त्वनपेक्षमसतिह्यनुमानमितिसूत्रमुदाजहार तन्नेष्टसम्पादकं यतइदं सूत्रं स्मृत्यर्थविरुद्धार्थबोधकं प्रत्यक्षवेदवचनं भवेत् स्मृतिःस्वकल्पितवेदमूलासती न प्रमाणमित्यर्थकं यद्यपि सामाजिकः मूलवेदविरुद्धं ब्राह्मणं प्रदर्शयेत्तर्हि अप्रमाणं भवेत् नैव तादृशं प्रमाणं उपलभामहे अथ त्वत्कृतव्याख्यया विरुद्ध्येत चेत् विरुद्ध्यतां नामकानोहानिःत्वद्व्याख्याया एवोपेक्ष्यत्वात् अविरोधे मूलवेदकल्पनायां प्रामाण्यं चिन्तनीयं अतस्सर्वथा त्वन्मतं शिथिलमेव अधिकं पत्रान्तरे वक्ष्यामि ॥

तस्मात् वैदिकानामधिकृतानां कर्मणि यागीयहिंसा न दोषमावहतीत्यन्यत्र विस्तार इति चतुरस्रं तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणाविशेषादिति जैमिनिः पशुधर्माणां यूपनियोजन विशसनादीनामग्नीषोमीयपशौ नियमितवान् यदि ऋषिवाक्यं प्रमाणं स्यात् अन्यथा तवापिमतं तत्तुल्यमिति किंविचारणीयं इति शिवम् ॥

द्वितीयपत्रस्योत्तरमिदं यदाह किं ते प्रमाणमिति प्रश्नस्य समाधानं चतसृणां मूलवेदसंहितानां प्रामाण्यं क्रियत इति निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यमिति कपिलोऽपि स्वतः प्रामाण्यं

SGDL

संहितानामाहेति च तदसत् न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुते-रिति पूर्वसूत्रेण वेदमात्रस्यग्रहणेऽत्र संहितांग्रहणानुपपत्तेः न वेद-पदं संहितामात्रमाह मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमितिपरिशिष्टेका-त्यायनर्षिराह आह च जैमिनिः वेदोवाप्रायदर्शनादिति परिशिष्टं न परिभाषापरं प्रामाणिकार्यवेदकृत्वाच्च वेद इति व्युत्पत्तिसं-भवात् मन्त्रेपि परिभाषापत्तेः मन्त्रो वा वेदशब्दभाङ् न स्यात् परिभाषां विना व्यवहारासंभवात् अदेङ्गुण इति तच्छास्त्रपरि-भाषावत् वैदिकपरिभाषापि प्रयोजनवत्येव व्यवहारलाघवं हि प्रयोजनमतोपि वेदपदं मन्त्रब्राह्मणसमुदायमेव वक्ति इत्थं च वेद सामान्यविचारं च प्रस्तुत्य संहितामात्रस्य प्रामाण्यं कथं ब्रूयात् कपिलर्षिः ॥

प्रमाणसिद्धाः कतिपदार्था इति प्रश्नस्योत्तरं, नाखिलवत्तत्र कारणं स एवजानाति यत्तुप्रमाणसिद्धाः यवादयोहव्यपदार्था इति तल्लेखनमनुपयुक्तं तस्य प्रश्नाविषयत्वात् विषयश्च प्रश्नस्य द्रव्यगुणादिरत्तोननुरूपं—यदर्थं तेषामुपगममिति तृतीयोपि प्रश्नोन समाहितः पदार्थानामनुक्तेस्तन्निबन्धितप्रयोजनानुक्तिसंभवात् दया-नन्दमुनेर्ह्दयापरिज्ञानमूलं वेति विदांकुर्वंतु सन्तः ॥

प्रमाणानां प्रामाण्यं किं रूपमिति प्रश्नतात्पर्यमजानन् मूले मूलाभावादमूलं मूलमिति यत्कपिलसूत्रमुदाहरत् तत्कारणस्य कारणान्तरांगीकारेऽनवस्थेति मूले कारणस्य कारणान्तराभावपरं नायं कारणान्तरं वा प्रमाणान्तरं वाऽपृच्छत् अज्ञातज्ञापकत्वं वा उततद्वृत्तिधर्माप्रकारकज्ञानजनकत्वं वा प्रामाण्यमिति तदवि-दित्वा एवं लेखनं श्रमकरमेव ॥

SGDF Sri Gangeshwari Digital Foundation

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः प्रमाणं नवेति पृष्टप्रश्नस्य समाधानं प्रथमप्रश्नान्तर्गतमेवेति तन्न सम्यक्प्रमाणसामान्यविषयकः प्रथमः प्रमाणविषयको द्वितीयः तथा च प्रथमेन न द्वितीयसमाधिः।

वेदोक्तं कर्मानुष्ठेयं नेति प्रश्नोत्तरमनुष्ठेयमिति तत् सम्यगेव।

वेदैकदेशप्रामाण्ये किं मानमिति प्रश्नोत्तरं तदसदेव त्वनुक्तेः।

वेदार्थनिर्णायकं शास्त्रं किमप्यस्ति चेति प्रश्नोपि वेदार्थनिर्णायकानि षट्शास्त्राणीति सम्यक्समाहितः॥

स्मृतीनां प्रामाण्यमस्ति नवेति प्रश्नोपि वेदानुकूलं प्रमाणं स्मृतय इति लेखनं युक्तमेव परन्तु पुरापि नवं भवतीति लाक्षणिकोयं पुराणशब्द इति लेखनं न संगतं रूढ्यर्थपरित्यागात् मुख्येकार्यसंप्रत्ययन्यायविरोधात् ब्राह्मणं पुराणशब्दार्हं न भागवतादिकमिति तन्मंदं न ब्राह्मणं पुराणमिति प्रसिद्धं किं तु वेदत्वेन तथा च अक्षपादसूत्रं विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगादिति अत्र भाष्यं त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधिवचनान्यर्थवादवचनानि अनुवादवचनानीति—जैमिनिरपि शेषे ब्राह्मण शब्दइत्याह अत्र भाष्यं शावरं मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेदइति एवं वेदोवाप्रायदर्शनादिति ब्राह्मणे वेदपदप्रयोगः जैमिन्युक्तः ब्राह्मणस्य वेदत्वे संगतो भवति। अतो न ब्राह्मणं पुराणं। यदपि प्रयोगासाधुत्वं लिखितवान् स प्रष्टव्यः किं

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

भाव्यमिति शब्दासाधुत्वमुतार्थासाधुत्वं नाद्यः भूप्राप्ताविति
त्यस्मात् भावयितुं योग्यो भाव्य इति शब्दसाधुतासंभवात्
अत्र व्याकरणप्रमाणं पत्रान्तरे वक्ष्ये नामरूपगुणैर्भाव्य*मि-
ति प्रयोगात् भवन्तमिति परसवर्णाभावो लेखकप्रमादः
यत् लेखनीयमितिनासाधु संधेरविवक्षितत्वाद्वाक्ये प्रश्न इत्ये-
कवचनं नानुपपन्नं द्रव्यं गुणस्तथा कर्मेत्येकवचनं जा-
त्यभिप्रायं यथा तद्वत्प्रकृतेप्युपपद्यते तस्यापि उत्तरमिति
साधुरेव वाक्यत्वात् गीर्वाणवाण्येत्यपि साधुरेव वाणीप-
दस्य भाषापरत्वसंभवात् कालोपि शास्त्रार्थरसं पास्यतीति
त्वत्प्रयोगवत् ॥

स्वतः प्रामाण्यं क्रियत इति कथं ते प्रयोगः प्रामाण्ये
कृतिसाध्यत्वबाधात् तद्वदेव प्रमाणानां प्रमाणं भवितुम-
र्हतीति प्रयोगोनुचितः तद्वदेवेति वाक्यं हि यथा मूलममूलं
तथा प्रमाणं प्रमाणरहितमित्येतमर्थं प्रतिपादयति तद्विरुद्धं
चेदं प्रमाणानां प्रमाणं भवितुमर्हतीति कथं ह्यत्रबोधः प्र-
माणसम्बन्धिप्रमाणमित्यङ्गीकारे तत्प्रमाणं निरूपणीयं
नित्योनित्यानामितिवत्प्रमाणवृत्ति प्रमाणत्वसंपादकमिदं
प्रमाणमिति उपगमोप्यनुपपन्नः अनवस्थाप्रसंगात्। षष्ठ
प्रश्न इति वक्तव्ये तृतीय इति लेखनमशुद्धं किन्त्विति वक्तव्ये
किंचेति प्रयोगोनुपपन्नः ब्राह्मणानां न वेदत्वमित्यत्र हेत्व-
नुक्तेर्न्यूनतेति शिवम् ॥

* त्वाहसाविति सूत्रशेखरे न चैवं तत्रास्य चारितार्थ्यात् केवले परत्वा-
त्वयाभ्यां भाव्यमिति प्रयोगाच्च ॥

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

आषाढस्यासितेपक्षे सप्तम्यामिन्दुवासरे ।
न युक्ताः वैदिकीत्येष शास्त्रविनिर्णयः ॥

—***—

उत्तरम्-

याग़ीयहिंसामवैदिकीं प्रतिपादयन्तोवयं विप्रतिपत्त्यादिस्पष्टीकरणवाक्यजातानि दृष्ट्वाऽथ प्रमाणभूतानि वचांसि विचारयामः । वायव्यं श्वेतमालभेतेति वचनं न यागीयहिंसाया वेदबोध्यत्वस्य साधकं तत्र हेतुः-प्रकृतवाक्ये पशुपदादर्शनात्, यदि कथंचित् श्वेतमिति विशेषणेन विशेष्यस्य पशोर्ग्रहणं स्यात्तदाऽपि आलभेतेति क्रियापदस्य हिंसाऽर्थपरत्वाभावात्,आलम्भनक्रियायाः पर्यायक्रियापदं महीधरेणाऽपि स्वभाष्ये इत्थं विन्यस्तं दृश्यते । यथा-२४। २० यजुषि-" आलभते=नियुनक्ति" । इति । नहि केनाऽपि नियुनक्ति इत्यस्यार्थो हिनस्तीति प्रतिपादयितुं शक्यः । यच्चोक्तं " विधिबोध्या न वा वेदबोध्या नवा मन्त्रबोध्यानवेति" तदसत् । भवन्नये विधि शब्देन ब्राह्मणग्रहणात् विधिमन्त्रातिरिक्तस्य वेदस्याभावात् । विधिमन्त्रयोर्वेदपदवाच्यत्वे सति तयोरेकतरेणैव भवदभिप्रायसिद्धेः पदत्रयविन्यासोऽव्यर्थः पुनरुक्तश्च । आलम्भनक्रियाऽर्थो हिंसातिरिक्तो हि कात्यायनेनाप्यऽलेखि । यथा पौर्णमासेष्टिप्रकरणे-संयौति जनयत्यैत्वेति समं विभज्यासथं हरिष्यन्नालभत इदमग्ने-

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

रिदमग्नीषोमयोरिति हविरालम्भने । सहाज्यं देवस्य त्वेति श्रपणं माभेरित्यालभते तमेरुरिति पुरोडाशश्रपणविषये । इत्यादिषु यथाङ्पूर्वस्य लभधातोः स्पर्शने वृत्तिस्तथैव " वायव्यं श्वेतमालभेतेत्यत्रापि ऊह्यम् ॥

जातवेदो वपयेत्यादि यद्वपाहोमसाधकं वाक्यं मत्वाऽलेखि,न तदपि भवदिष्टसाधकं," तृतीयाऽष्टके प्रथम प्रश्ने " इति भवदुद्धृतस्थाने तावत्तु न भवता ऋग्वेदादा-वन्यतमस्य वेदस्य स्पष्टमुल्लेखः कृतः । यदि ह्यष्टकपदेन ऋग्वेदं कश्चिदनुमिनुयात् तदपि न। ऋग्वेदीयतृतीयाऽष्टके तादृगृचोऽदर्शनात् । ऋग्वेदे च प्रश्नानां ग्रन्थभागत्वेना-ऽविन्यासात् नाप्यनुमानं सम्यगुपपन्नं भवति अतएव कुत्रत्येयमृगिति निर्धारणपर्यन्तं सत्यनाऽऽवश्यकेऽपि अ-स्मदुत्तरे, किञ्चिमद्ब्रूः ॥

नेयमृग्वेदचतुष्टयान्तर्गता दृश्यते। नाप्यस्यां पशोर्वधोवि-धिवचनत्वेन,नचाऽनुवादवचनत्वेन,नाप्यर्थवादवचनत्वेन विहितोदृश्यते। केवलया"जातवेदः वपयादेवान्गच्छ"इत्यु-क्त्यानैवपशोर्वधोनिरूपयितुंशक्यः । यथाह्यन्त्येष्टिकर्मणि मृतानां जन्तूनां तत्तद्देहावयवानुद्दिश्योच्यते–"सूर्यंचक्षुर्ग-च्छतुवातमात्मा द्यांच गच्छ पृथिवीं च धर्मणा"इत्येवमादि-वचनैश्चक्षुरादीनां स्वस्वकारणलयो वर्ण्यते तथैवाग्नौ चितायां हूयमानानां जन्तूनां देहगतवपादेरपि वाय्वादिदेवान्प्रति गमनस्य प्रतिपादयितुं शक्यत्वात् नैतच्छक्यते वक्तुं यद्व-

SGDT Sri Gargeshwari Trust, Vrindavan

पोत्खेदनं पशुवधमन्तरा न संभवतीति । स्वयं मृतानामपि प्राणिनां वपाचर्माद्युत्खेदस्य लोके दृष्टचरत्वात् ॥

हृदयस्याग्रेवद्यतीति नास्ति वेदवचनम्, नाप्यस्य कुत्रत्यमिदं वचनमित्युल्लेखः कृतस्तत्रभवताऽच्युताश्रमादिस्वामिना । नापि "अवदानं सच" इति पुंनपुंसकयोः सामानाधिकरण्योक्तिर्वक्तुर्बोधसौष्ठवं व्यनक्ति । प्रत्यहमऽनेके पुत्रादयः पित्रादिषु कारणान्तरैर्मृतानां शरीराणि जुहुत्यग्नौ । तथा सति पशोर्गवाश्वोष्ट्रादेर्मनुष्योपकारक प्राणिवर्गस्य मृतस्य शरीरदाहादिषु नैव हिंसां पश्यामः "अत्र पशुपदं नास्तीति वक्तुं शक्यते" इति तु स्वयं चाह तत्र भवान् । समाधानं च न भवान्कृतवान् । तथात्वे पशु ग्रहणमप्यमूलमेव ॥

वसन्तायकपिञ्जलानालभते । इत्यस्योत्तरं पूर्वोक्तमेव ज्ञेयं, तत्राप्यालम्भनक्रियायास्तथाऽर्थत्वात् ॥

जैमिनीयसूत्रप्रमाणेन कपिञ्जलपदं हि प्राणिविशेषं वदतीति असाध्यसाधनं, नहि भवतां कपिञ्जलपदेन प्राणि विशेषग्रहणं साध्यं, किन्तु पशोर्वधः साध्योभवति । न च सोऽनेन मीमांसावचनेन साध्यते । टिप्पणीगतंभवत्कृतं व्याख्यानमपि न साधु " घृतेन=घृतवपया " इति । यदि कथंचित् घृतान्तर्गता वपा घृतपदेन संगृह्येत, तदेदमस्मत्सौकर्याय भवति, न भवत्पक्षसाधनाय । तत्र तत्र वपा शब्देन घृतान्तर्गतां वपां तथात्वे ग्रहीष्यामः ॥

SGDF

दृष्टः प्रयोग इतिचेदिति सूत्रं मीमांसादर्शने ११ ।१।३९ विद्यते नतु ११ अ० प्र० ८ अ० इत्यस्मिन्संकेते। न च मीमांसादर्शने प्र० इत्यक्षरसंकेतितः कोऽपि ग्रन्थविभागोस्ति तत्रहि १२ अध्यायाः प्रत्यध्यायं ४ पादाः सूत्राणि च सन्ति, न किमपि प्र०इतिसंकेतितम्। अन्यच्चाश्चर्यम् यद्यपि कपिञ्जल पदेन प्राणिविशेषग्रहणे न वयं विवदामहे,तथापि"कपिञ्जलपदंहि प्राणिविशेषंवदति आहच जैमिनिः दृष्टःप्रयोग इतिचेदिति " न समीचीनम् । दृष्टः प्रयोगइतिचेदितिसूत्रे तथा प्रतिपादनाभावात्। तत्सूत्रोपरि शबरस्वामिकृतं व्याख्यानं चेत्थम्—

" अथोच्येत दृष्टो बहुवचनस्य प्रयोगश्चतुरादिषु चत्वारो ब्राह्मणा इति ।तथेह। इहापि कपिञ्जल शब्दस्यदृष्टः प्रयोगः कपोते मयूरे च । महान् कपोत उच्यते,कपिञ्जलोऽयं न कपोत इति । तथाल्पो मयूरः कपिञ्जलोऽयं न मयूर इति " ॥

अत्रापि " कपिञ्जलानालभते " इति नोदाह्रियते किन्तु महान् कपोत उच्यते इत्यादि लौकिकवाक्यमुदाह्रियते । अथ नापि इदं सूत्रं सिद्धान्तपक्षस्थमपि तु पूर्वपक्षे आशङ्का वचनम् । इतःपूर्वं यदुक्तम् "बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यादिति ११ । १ । ३८" तदुपरि पूर्वपक्षे आशङ्कावचनमेतत् "दृष्टः प्रयोग इति चेत्"११ । १ । ३९ इति । एतदुत्तरं च-"भक्त्येति चेत्"११।१।४० इति आशङ्कानिराससूत्रम् । आशङ्कावचनं च सिद्धान्तायोपयुज्यमानं न साधु भवति ॥

SGTF

यद्यपि मीमांसादर्शने १२ अध्याये वेदविरुद्धानि सूत्राणि—"शामित्रे च पशुपुरोडाशो न स्यादितरस्य प्रयुक्तत्वात् १२। १। १३ मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् १२। २। २ मांसपाकोविहितप्रतिषेधः स्यादाहुतिसंयोगात् १२। २६ सवनीये छिद्रापिधानार्थत्वात् पशुपुरोडाशो न स्यादन्येषामेवमर्थत्वात् १२। २। ८ क्रिया वा देवतार्थत्वात् ९ लिङ्गदर्शनाच्च१० पशौतुसंस्कृते विधानात् १२ पशोश्चविप्रकर्षस्तन्त्रमध्ये विधानात् ३३ पशौ च पुरोडाशे समानतन्त्रं भवेत् ११। ३। १७ पश्वतिरेकश्च ११। ४। २५ पशुगणेकुम्भीशूलवपाश्रपणीनांप्रभुत्वात्तत्र प्रभावः स्यात् २९ पक्तिभेदात्कुम्भीशूलवपाश्रपणीनां भेदः स्यात् ३६" इत्यादीनि सन्ति बहूनि, परन्तु न तथास्मिन् (दृष्टः प्रयोगइतिचेत् ११। १। ३९) सूत्रे काचिन्मांसहोमस्य पशुवधस्य च पुष्टिरस्ति॥

छागोवामन्त्रवर्णादिति सूत्रं द्वादशाध्याये मीमांसादर्शने नैवास्ति। मुधैव द्वादशाध्यायस्थेन सूत्रेणेति भवल्लेखः। न च तादृक्सूत्रेण पशोर्वधस्य समर्थनं संभवति। वधक्रियाऽदर्शनात्। छागशब्दमात्रोपन्यासेन छागवधाऽसिद्धेः॥

छागस्यवपाया मेदसोऽनुब्रूहि। इति मन्त्रो न चतसृषु वेदसंहितासु दृश्यते, नापि कृष्णयजुषोऽपि संकेतस्तत्रभवता कृतोऽस्ति। किन्तु यजुर्वेदे २१। ४१ पाठभेदेन—"छागस्य वपायामेदसोजुषेताम्"इत्यादिकः पाठोदृश्यते। तत्र ततः पूर्वतनस्याश्विनाविति पदस्यान्वयोऽस्ति। अश्विपदेन च तत्र सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं सुकरम् तथासति सर्वस्य

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

प्राण्यऽप्राणिस्थस्निग्धभागस्य सूर्यचन्द्रमसिचोपयुज्यमा-नत्वे सुकरं व्याख्यानं,न ततोहि पशुवधस्य सिद्धिः कथमपि संभवति । यथाह निरुक्तकारः-" अश्विनौयद्व्यश्नुवाते सर्वंरसेनान्योज्योतिषान्यः ... अहोरात्रावित्येकेसूर्याचद्रमसा-वित्येके " ॥ निरु० १२ । १ एवंसति "मन्त्रेणापि हिंसोक्ते-ति हिंसा यागाङ्गम्" इत्युक्तिरमूला ॥

ओषधेत्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः (यजुः ।६ १५) इति स्पष्टं हिंसानिषेधकवाक्यस्यापि यत्रहिंसापरोर्थस्तत्र नास्ति पशूनां कुशलं,भाग्यं तेषां मन्दं मन्ये । अच्युताश्रम स्वामिभिरिव पूर्वैरपि कैश्चिद्वेदतत्त्वार्थमजानद्भिर्हिंसायां विनियोगः कृतोस्ति यं दृष्ट्वैव निरुक्तकार आह निरु० १ । १५ "अथाप्युपपन्नार्था भवन्ति ओषधेत्रायस्वैनम् । स्व-धिते मैनं हिंसीरित्याह हिंसन्" इत्याशङ्क्य-"यथोएतद-नुपपन्नार्था भवन्ति इत्याम्नायवचनादहिंसाप्रतीयेत " । निरु० १।१६ एतेन निरुक्तकर्त्तुर्यास्कस्य ध्वनिरियं प्रतीयते यत् अहिंसापरेणाम्नायवचनेन विनियुक्तेन हिंसा न कर्त्त-व्येति ।अन्यच्च-कात्यायनो महर्षिराह-मन्त्रान्तैः कर्मादिः सांनिपात्योभिधानात् । का० श्रौ० १ । ३ । ५ अर्थः-अभि-धानान्मन्त्रे तत्तत्कर्मप्रतिपादनात् मन्त्रान्तैर्मन्त्राणामन्त-वचनैः सह कर्मादिः सांनिपात्यः संनिपातयोग्यः करणीय इति यावत् । मनसि विचिन्त्य यथाकथनमेव कर्म कर्त्ता करोति । तदत्र यदि वेदेहिंसाभीष्टाऽभविष्यत् तर्हि हिं-सार्थपरामन्त्रा(येवस्तुतो नैव विद्यन्ते) एवविनियुक्ता अभ-

SGDF Sri Gurudev...t Digital Foundation

विष्यन् । तथाऽसति वेदो हिंसांनिषेधत्येव नतु विदधातीति सुव्यक्तम् । तथात्वे कात्यायन एव स्वोक्तिविरुद्धं कथं नाम सूत्रयेत्—उत्तानं पशुंकृत्वाऽग्रेणनाभिंतृणंनिदधात्योषधेइति का० ६ । ६ । ८ अतएवनैतच्छ्रद्धेयत्कात्यायनोमहर्षिरेव स्वोक्तिविरुद्धं पशुवधे पशुरक्षाविधायकं मन्त्रं विनियुञ्ज्यादिति । अपि केनचिदन्येनैतत्प्रक्षिप्तमिति मन्ये । न च कात्यायनकृतानि श्रौतसूत्राणि तैत्तिरीयशाखापराणि किन्तु मूलयजुर्वेदपराण्येवेति । तथात्वे तैत्तिरीयशाखमनुसृत्य तद्ब्राह्मणंवानुसृत्यतद्व्यवस्थापनंनयुक्तम् । न च मूलयजुर्विरुद्धमापस्तम्बंकश्चित्प्रज्ञावाञ्छ्रद्धास्यति । "मैनं हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति ॥"

"मन्त्र व्याख्यारूपस्य ब्राह्मणस्याऽप्रामाण्ये" इत्याद्युक्त्वा ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यात्वाङ्गीकारे व्याख्यायामूलाऽविरोधेनैव प्रमाणत्वात् न मूलमन्त्रविरुद्धा ब्राह्मणव्याख्या विद्वद्भिरादरणीया । अस्मद्व्याख्यानं तु न मूलविरुद्धं नापिवेदान्यदेशस्थहिंसानिषेधकवाक्यान्यस्मत्पक्षेविरुध्यन्ते । जातवेदोवपयेत्यादि पूर्वं प्रत्याख्यातम् । तथाऽग्नीषोमीयं पशुमालभेतऽइति वचनं न चतसृणां वेदसंहितानां मध्ये दृष्टचरम् नापि तत्र वधोविहितः । न च आलभेतेत्यस्यार्थो हिंस्यादिति वक्तुं शक्यम् । आलम्भनं च कूटादिप्रायश्चित्तपूर्वकोपाकरणरशनापरिव्ययणयूपनियोजनप्रोक्षणस्रुचयाघारानन्तरकालिकसमञ्जनपर्यग्नीकरण वपाश्रपणान्वारम्भणाधिगुप्रैषसमकालशामित्रानुनयना-

SGDF Sri Gurgeshwari Digital Foundation

धस्ताद्बर्हिरपासनप्रत्यङ्मुखावस्थापनवाशादिप्रायश्चित्तसंज्ञसहोमरशनाविमोकादिवाचकमिति भवदुक्तौ न किमपि मानमुपन्यस्तं भवता । वेदेषु वधस्याऽविहितत्वादुत निषिद्धत्वात् तत्त्यागे प्रायश्चित्ताऽनुक्तेर्नैतदालम्भनपदवाच्यं वेदविहितम् । मैनं हिंसीरिति स्पष्टंनिषेधवचनात् वेदविरुद्धा हिंसेति सुव्यक्तम् । मा हिंस्यात्सर्वाभूतानि इति संहितावाक्यं माभूत् । परं भवन्मतेऽन्येषां ग्रन्थानामपि प्रामाण्यात् न भवांस्तदऽनादरं कर्त्तुमर्हति । प्रकरणेन पशुग्रहणेऽपि तद्वधस्यानुक्तत्वादथ च तद्वधनिषेधात् (मैनं हिंसीरिति निषेधः) न हिंसा विहिता ज्ञायते ॥

अथ यद्भवानाह—सन्ते प्राणोवायुना गच्छताᳬ समङ्गानि यजत्रैः । सं यज्ञपतिराशिषा (यजुः ६ । १०) आध्यात्मिक वायुः प्राणो बाह्यवायुना एकीभवतु पश्वङ्गानि यजत्रैः सह संगच्छन्तां यज्ञसाधनतां यान्त्विति तदर्थः । प्राणाऽगमने कथमेतदुपपद्यताम्—तस्मात्प्रकरण नियमोऽवश्यंवक्तव्यः । हिंसा उपेयेति ॥

अत्रोच्यते—पशो ! (ते) तव (प्राणः) प्राणवायुः (वातेन) बाह्यवायुना सह (संगच्छताम्) सङ्गं प्राप्नुयात् (यजत्रैः) यज्ञसाधनपदार्थैः सह ते (अङ्गानि) (संगच्छन्ताम्) (यज्ञपतिः) यजमानः (आशिषा) (संगच्छताम्) सङ्गं प्राप्नुयात् । संगमनं हि गमनार्थकं न संभवति । बाह्यवायुसंगे नविना कस्याऽपि प्राणाःक्षणमपि स्थातुं न शक्नुवन्ति किन्तु सर्वे जीवा बाह्यवायु-

SGDF Sri Gangeshwar Digital Foundation

संगेनैव जीवन्ति । अतोबाह्यवायुसंगोक्त्या पशोर्जीवनमेवोच्यते न तु मरणम् न च मारणम् ॥

यच्चोक्तमन्तरेण दोहनं पयो न निस्सरति, दोहनं च मातुर्वत्सस्य च दुःखं जनयति । दुःखदापूर्वजननानुकूलो व्यापारो हि हिंसा इत्यादि । तन्न समीचीनम् । यासां गवां पयो यजमानादिभिर्निस्सार्यते ताभ्यो विशिष्टं भक्ष्यंभोज्यं च दीयते तत्कृतोपकारप्रत्युपकाररूपेण यत्पयोगृह्यते न तद्धिंसाकरम् इतरथा तु वेतनेन दत्तेनाऽपि भृत्येषु हिंसा दोषापत्तिर्दुर्वारा । श्रीमता भवतापि च पूर्वं प्राणवियोगानुकूलोव्यापारो हिंसेति–हिंसालक्षणं लिखितं तथात्वे नहि पयोनिस्सारणे हिंसां पश्यामः । कश्चिद्न्यादिषु या क्षुद्रजन्तुहिंसा सा न यज्ञियाऽपितुलौकिकी,नापि सा प्राणिवधोद्देशकृताऽपितु अनुद्दिष्टा । तस्याश्चापि प्रायश्चित्तभूतं वैश्वदेवबलिकर्मप्रात्यहिकमृषिभिरुपदिष्टं येन स्पष्टं तस्या अपि पापजनकत्वं, तथैव रुद्रयागादिषु यैर्भवदादिभिरज्ञानमूलं पशुहिंसनमुपदिश्यते कार्यतेऽनुमोद्यते वा तदपि पापजनकं प्रायश्चित्तार्हमधर्मं वा स्वीकुर्वन्तु तत्र भवन्तः । "यजमानस्यपशून्पाहि" (यजुः १ । १) इति श्रुतिर्नयज्ञाङ्गपशून्पाहि इति पदं बोधयति इति भवदुक्तिरपि न युक्ता । तत्रैव यजमानशब्दसत्त्वात् यज्ञाङ्गत्वसुव्यक्तेः । सर्वेष्वेव यज्ञेषु घृताद्युपयोगेन पशवः प्रयोजनीयास्तद्रक्षणं च कर्त्तव्यत्वेनोपदेश्यमेव । यूपस्यखादिरत्वादिविधिः शास्त्रसंमता तत्फलं च विज्ञातमविज्ञातं

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

वाऽस्तु न तेन कस्यापि पक्षसिद्धिः पक्षहानं वा। विहित प्रतिकूलपथाहृतेन लौकिकेन घृतादिना होमसिद्धौ यूपादि व्यर्थतोक्ता सा न। एवं चेत् पशुहोमार्थेपि मांसलाभो लोकसिद्धः स्यात् किं यूपादिनेति समानोदोषः॥

माभूदनुबन्ध्यपदे हननशङ्कातन्निरासश्च। कानो हानिः। यजमानप्रार्थ्ये द्विपदचतुष्पदसुखे यजनक्रियासंनिधानात् अवश्यं यज्ञसाधनपशूनां सुखं जीवनं च प्रार्थ्यते इति व्यक्तम्। अस्तु नामेह कृतानां कर्मणां भोगोऽमुत्र। नैतावताऽत्र कृतवधस्य पशोर्लोकान्तरे योन्यन्तरे च पशुत्वाभावात् पशुनिर्द्देशपूर्वकाशीःसंगतिरायाति॥

अध्वरशब्दे नञो निषेधार्थमनङ्गीकृत्याऽल्पार्थाङ्गीकारोऽपि यज्ञमर्मानभिज्ञतामूलः। निरुक्ते ध्वरतिर्हिंसाकर्मातत्प्रतिषेधोऽध्वरः इत्यर्थस्य विद्यमानत्वात्। सायणाचार्येणाऽपि "अग्ने यं यज्ञमध्वरम्०" ऋ०१।१।४ एतन्मन्त्रभाष्ये हिंसानिषेधार्थ एवविन्यस्तो न स्वल्पाऽपि हिंसाऽङ्गीकृता। एवं वेदे यागीयहिंसानिषेधात् वेदविरुद्धा वेदनिषिद्धा च हिंसा सा सुधीभिर्वैदिकैः सर्वदा सर्वथा वर्ज्यैव॥

अन्यदपि चाथर्ववेदे-मु॒ग्धा दे॒वा उ॒त शुना॑यजन्तो॒त गोर॑ङ्गैः पु॒रु॒धाय॑जन्त ७।५।५॥

इत्यादिना पशुना यजनं मुग्धकृतं वदन् निन्दति निषेधति च वेदः। अत्र देवा इत्येतेन यजमानाः इति वदति च सायणाचार्यः। तथा च सायणमतेनापि पशु-

SGDF Sri Gangeshwari Digital Foundation

यजनस्याऽज्ञानियजमानकृतत्वात्पशुहिंसा न यज्ञेकेनापि ज्ञानिना वेदाभिप्रायविदाकर्त्तव्येति स्पष्टमेव ॥

एवं बहुधा यागीयहिंसायावेदाऽप्रतिपाद्यत्वेवेदविरुद्धत्वे वेदनिषिद्धत्वे च सिद्धे कोविद्वान् अस्याः समर्थनं कुर्यात् ॥ अध्वरशब्दो यदि यज्ञे रूढोऽभविष्यत् न योगरूढस्तर्हि निरुक्तकारोऽस्य निर्वचनं नाकरिष्यत्। "ध्वराहिंसा तद-भावो यत्र" सोध्वर इति देवराजयज्वा निरुक्तभाष्यका-रोऽपि नावदिष्यत् । तस्मात् हिंसारहित एव यज्ञो भव-तीति सिद्धम् । न त्वल्पहिंसायुक्तोऽध्वरः । भवतां चेयम-ल्पार्थेनञ्कल्पनास्वकपोलकल्पनैव नान्यदिति दिक् ॥

"यद्धि शास्त्रं हिंसा दोष इति प्रत्यपादि" इत्यत्र येन शास्त्रेणेति वक्तव्ये यद्धिशास्त्रमित्युक्तिरयुक्ता । न च वेद शास्त्रं सनातनं हिंसां प्रतिपादयति यागे । अतएव राज्ञां शिक्षणरक्षणयोरधिकृतानां हन्तुर्हननदोषाऽभावइव यागी-याहिंसानवेदविहिता । अविहिता च सती न दृष्टान्तम-र्हति । सन्यायोवेति वक्तव्ये तन्न्यायोऽत्रेत्युक्तिरपि वक्तु-रुक्तेरयुक्तत्वसाधिका ॥

मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषादिति यदाह भवान् जैमिनिसूत्रम् । तदप्यसत्। तत्रोपन्यस्तहेतोरसत्त्वात्। "चो-दनाविशेषात्" इति हेतोर्वेदविहितत्वाऽभावात् । अपि च तद्विरुद्धत्वात्तन्निषिद्धत्वाद्वा ॥

"वेदार्थनिर्णयार्थं षण्णामपिसूत्राणां प्रामाण्यम्" इति लेखनं मूलाविरोधपर्यन्ततात्पर्येण । न तु यदर्थनिर्णयार्थं षण्णां शा-

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

सूत्राणां प्रामाण्यमभ्युपगम्यते तद्विरोधार्थं तत्प्रामाण्यमभ्युपगन्तुं शक्यम् । एतेनैव " शमिता च शब्दभेदात् " इत्यपिप्रत्युक्तं बोध्यम् ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामित्यादिवाक्यान्तर्गतमोहजनित हिंसादिपापकर्मणां तामसत्वे यदाह भवान्—"नहिशास्त्रप्रयुक्ता प्रवृत्तिर्मोहमूला" इति तदसत् ! तत्रानुबन्धादीनां सर्वेषामेव मोह मूलत्वोक्तेः । शास्त्रे च तदऽप्रतिपादनात् ॥

बीजैर्यज्ञेषुयष्टव्यमित्यादिवचनानां वसुना प्रत्युक्तत्वेऽपि ऋषिमतविरुद्धत्वात् प्रत्युक्तेरहैतुकत्वाच्च समादर एव वैदिकैःकर्त्तव्यः।

धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितमिति भारतवचने स्पष्टं हिंसानिषेधेऽवैदिकत्वे चोक्ते तस्य कामकृतनिन्दापरत्वोक्तिः साहसमूलाऽमूला वा । न तत्र वैदिककर्मणो निन्दाऽपि तु हिंसाया अवैदिकत्वं धूर्तकल्पितत्वं चोक्तम् ॥

उक्तप्रकारेण मीमांसादर्शनस्थसूत्राणां तेषां स्पष्टमवैदिकत्वे सिद्धे तन्मतेनैव तदऽप्रामाण्यं सुव्यक्तम् ॥

तथात्वे वेदस्मृतिभारतादिशिष्टवचनैर्हिंसाया यज्ञे निषिद्धत्वादऽविहितत्वाच्च यागीया हिंसा वैदिकैस्त्याज्यैवेति निरवद्यम् ॥ इति शिवम् ॥

अथ द्वितीयपत्रोत्तरप्रत्युत्तरम्

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यमिति वेदानां स्वतःप्रामाण्येऽस्मदीयं कापिलसूत्रम्, न चाऽत्रब्राह्मणसंग्रहे किमपि पदं पश्यामः । पारिभाषिकं मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदत्वं न सार्वत्रिकं

SGDF
Sri Gurudakshina Digital Foundation

भवितुमर्हति परिभाषाहि तत्तद्ग्रन्थपरैव नतु सार्वत्रिकी। नहि कापिलीयं परिभाषा किन्तु कात्यायनकृता। तथासति वेदपदेन कथं कपिलोमन्त्रब्राह्मणात्मकं समुदायमभिप्रेयात्॥

प्रमाणसिद्धाः कति पदार्थाः इति प्रश्नस्योत्तरं प्रश्नाऽविषयत्वगतं तर्हि वक्तव्यं किमभिप्रायकः प्रश्न इति। प्रश्नविषयश्च स्पष्टीकरणीय इति॥

यदर्थं तेषामुपगममिति क्लीबत्वनिर्द्देशोदौर्बल्यं सूचयति॥

प्रमाणानां प्रामाण्यं किंरूपमिति यदि भवान् नास्मदुत्तरविषयमपृच्छत् किन्तु इदानींपत्रेऽस्मिन्नुद्धृतमपृच्छत् तर्हि प्रश्न एवाऽज्ञानमूलो व्यर्थो वा "अज्ञातज्ञापकत्वं वा उत तदऽवृत्तिधर्माऽप्रकारकज्ञानजनकत्वं वा प्रामाण्यम्" इति द्वयोस्तात्पर्यैक्यात्। द्वौनञौ प्रकृतमर्थमनुगमयतः इति द्वाभ्यां नञ्भ्यां तद्वृत्तिधर्मप्रकारकज्ञानजनकत्वार्थावगमात्॥

पुरानवं भवतीति पुराणव्युत्पत्तिर्न योगरूढ्यर्थत्यागपरा। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि चेत्यादि लाक्षणिकपुराणपदस्य गोपथादिषु घटमानत्वाद्ब्राह्मणानां पुराणत्वं सुवचम्॥

अक्षपादसूत्रे यदाह भवान् विध्यर्थवादेत्यादि तन्न वेदपरम् किन्तु शब्दप्रमाणपरम्। एतस्मात् अक्षपादमतेनाऽपि न ब्राह्मणं वेदः। नापि वात्स्यायनमतेन। "शेषे ब्राह्मणशब्द" इति वदन् जैमिनिरपि "शेषःपरार्थत्वात्" इत्युक्त्वावेदार्थोपनिबन्धीनिब्राह्मणानि वेदभिन्नान्येवाह, न तदन्तर्गतानि। मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेद इति शावरं भाष्यं न जैमिनिहृदयपरमतो नाऽपेक्षणीयम्। शेषः परार्थत्वात् इति जैमिनिसूत्रविरोधात्॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

अथ प्रयोगसाधुत्वसमाधौ यदाह—विचारश्च भाव्यः इत्यस्य समाधानं तदसत्। तत्र भुवः प्राप्त्यर्थाभावात्। नामरूपगुणैर्भाव्यमितिप्रयोगात् इत्युक्ताऽस्मत्पक्षपरभवदुक्तेश्च ॥

भवन्तमिति लेखकप्रमादस्तदामन्येत यदा यत्र तत्र पीतवर्णेन भवत्कृतो हि शोधो न स्यात्। अन्यत्र वा प्रायोऽयं दोषो न स्यात्॥

यल्लेखनीयमित्यत्रसंधेरविवक्षितत्वे विश्लेषपूर्वकोल्लेखो भविष्यत् ॥

प्रश्नानां बहुत्वे प्रश्नइत्येकत्वनिर्देशोऽयुक्त एव। जातिपरत्वे प्रश्नानां बहुत्वसंख्यान्वितत्वस्याऽयुक्तत्वात् ॥

गीर्वाणवाण्यालेख्यं इत्यत्र नास्माकमाक्षेपोवाणीपदप्रयोगे। किन्तु लेख्यं इत्यत्रानुस्वारोपरि अवसानत्वात्। तत्राऽधस्ताद्रेखासंकेतं दृष्ट्वाऽपियद्भवताऽन्यथा समाहितं तदज्ञानमूलमेव ॥

प्रामाण्ये कृतिसाध्यत्वबाधादिति हेत्वाभासः अङ्गीकारादिष्वपि कृञः प्रयोगसत्त्वात् ॥

प्रमाणानां प्रमाणरूपाणां ग्रन्थानां वचनं प्रमाणं भवितुमर्हतीति समाधानात्प्रमाणमिति साधु ॥

"किं ते प्रमाणं ? तत्सिद्धाःपदार्थाःकति ? यदर्थं तेषामुपगमः" इति वाक्यत्रयस्यैकत्र समावेशात् तृतीयप्रश्नस्येति लेखो युक्त एव। अन्यथापि कथंचिदपि न षष्ठत्वं, भवन्नयेपि प्रथम प्रश्नस्य प्रश्नत्रयत्वाङ्गीकारे पञ्चमत्वमायाति न षष्ठत्वम्। किन्त्विति तत्रवक्तव्यमित्यत्र हेत्वनुक्तेस्तथोक्तिर्न्यूना ॥

ब्राह्मणानां न वेदत्वमित्यत्र हेत्वनुक्तिर्न न्यूनता वेदत्वसाधकहेतूनां हेत्वाभासनिरूपणस्यैव पर्याप्तत्वात् ॥ इति ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

तात्पर्य—

प्रथम हम स्वामी अच्युताश्रम जी की संस्कृत चिट्ठी का तात्पर्य लिखते हैं फिर अपने उत्तर का तात्पर्य भाषा में लिखेंगे। हम पाठकों को स्मरण दिलाते हैं कि आर्यसमाज हैदराबाद के मुद्रित लघु पुस्तक के उत्तर में जो स्वामी अच्युताश्रम जी ने पत्र भेजा था जो वेदप्रकाश भाग (वर्ष) ६ मास ४ पृष्ठ ७४ पर छप चुका है और जिस का उत्तर भी आर्यसमाज की ओर से दिया हुआ वेदप्रकाश वर्ष ६ मास ५ पृष्ठ ८५ से ९२ तक छप गया है, उसी हमारे उत्तर के प्रत्युत्तर में स्वामी अच्युताश्रम जी का यह पत्र है जिस का तात्पर्य हम नीचे छापते हैं। प्रकरण के लिये पाठक वर्ग सब छपे पत्रों को मिला कर पढ़ेंगे तो भले प्रकार समझ में आवेगा॥

चिट्ठी का तात्पर्य

कोई लोग यज्ञ की हिंसा पर विवाद करते हैं कि यह विधिबोधित वेदबोधित और मन्त्रबोधित है वा नहीं। इस में हिंसा विधान पक्ष वैदिकों का (हमारा) और निषेध पक्ष दयानन्दियों का है कि जो ब्राह्मण को वेद नहीं मानते। इस में "हिंसा" मात्र पक्ष नहीं है क्योंकि रागपूर्वक हिंसा में बाध है। किन्तु " यज्ञ की हिंसा " पक्ष है। राग लौकिक है परन्तु स्वर्गविषयक प्रवृत्ति उस से भिन्न है॥

इस विवाद में यज्ञ की हिंसा विधिबोध्य है क्योंकि यज्ञ का अङ्ग है। जैसा कि सोमाऽभिषव। जो जिस का अङ्ग हो कर किया जाता है वह उस कर्म के बोधक वेद का बोध्य हुवा। इस व्याप्ति के अनुसार हिंसा भी वेदबोध्य सिद्ध है। प्रयाज के तुल्य प्रधानकर्मप्रयुक्तक्रिया होने से यह हिंसा अङ्ग है। इस से विशेषण भी सिद्ध है॥ इस प्रसंग में—

वायव्यं श्वेतमालभेत।

इस प्रकार याग कहा गया। वह यज्ञ देवतोद्देश से द्रव्यत्यागात्मक होता है। वह त्याग कहीं होमपूर्वक और कहीं छोड़ने से त्याग होता है। जहाँ होमपूर्वक है वहां पशुरूपी द्रव्य विना हत्या के संभव नहीं। इस से हत्या की अपेक्षा है। इस से इस हिंसा के मुख्य यज्ञ रूप कर्म में काम में आने से हेतु की असिद्धि नहीं (सिद्धि है)। न केवल यहां पशु का होम ही है। प्रत्युत वपाश्रपणादि का भी श्रुति विधान करती है:—

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

जातवेदोवपया गच्छ देवान् त्वꣳहि होता प्रथमोबभूथ ।
घृतेन त्वं तनुवोवर्धयस्व स्वाहा ॥

तृतीय अष्टक । प्रथम प्रश्न । इस ऋचा में वपा का होम कहा है कि-हे अग्ने ! तू वपा से देवतों की ओर जा क्योंकि तू ही मुख्य होता है । तू घृत=घृतस्थ वपा से देवतों के देहों को बढ़ा । इस हव्य को देवता खावें ॥

हृदयस्याग्रेवद्यति

इस से हृदय काटना । सो यह पशु मारे विना नहीं हो सकता । क्योंकि इस के विना न वपा उखड़ती न काटना बन सकता है । बस हिंसा नहीं बच सकती क्योंकि प्राणवियोगानुकूल व्यापार को हिंसा कहते हैं और पशु के होम में भी प्राण वियुक्त होता है । यद्यपि यहां संहिता में पशु पद नहीं है । यह (प्रतिवादी) कह सकता है ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते

यह शुक्लयजुः संहिता में कपिञ्जल का आलभन कहा है । कपिञ्जल शब्द प्राणिविशेष का वाचक है । जैमिनि भी कहता है कि-(११ अ० प्र० ८ अ०)

दृष्टः प्रयोग इतिचेत्

और अध्याय १२ के सूत्र-

छागोवा मन्त्रवर्णात्

से बकरेकी वपा रूप मेदोविशेष का ग्रहण प्रतिपादित है । इस से मन्त्र से भी हिंसा कही गई । इस कारण हिंसा यज्ञाङ्ग है ॥

मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि

यह वचन सामान्यतः हिंसानिषेधक है, न कि विशेषतः । और हिंसा की विधि विशेष विधि है । विरोध में उत्सर्ग अपवाद=सामान्य विशेष का न्याय लगाया जाता है ॥ और यह जो मन्त्र है कि-

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः

इस का अर्थ यह है कि-हे ओषधे=उपाकरण की दूसरी कुशा ! तू इस पशु की रक्षा क्षुर छेदनार्थ बचा ।।

प्रकरण से कुशा बीच में करके छेदने का नाम रक्षा है । कुशा बीच में विना किये छेदने में पशु रक्षित न रहेगा । अर्थात् देवतों के योग्य न रहेगा । हे पैनी धार के ! तू इस पशु को मनुष्य के समान मत मार । तथा च ब्राह्मण,तैत्तिरीय संहिता छठे काण्ड तीसरे प्रपाठक नवें अनुवाक में कहा है कि-

ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह वज्रो वै स्वधितिः । (इत्यादि) ॥

इस मन्त्र से भी हिंसाभाव नहीं समझा जाता है । यदि समझा जाता तो यूपच्छेदन में विनियोग न करता । और विनियोग आपस्तम्ब ने कहा है कि—

ओषधे त्रायस्वैनमित्यूर्ध्वाग्रदर्भमन्तर्धाय स्वधिते मैनं हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति ॥

इस से पाया जाता है कि दो कुशा बीच में विना किये न काटे किन्तु बीच में (२ कुशा) का व्यवधान करके काटे, नहीं तो काटने होम करने का विधान न करता और प्रकरण का पाठ भी व्यर्थ होता । फलवान् अर्थज्ञान के लिये अध्ययनका विधान है और अर्थज्ञानकी सफलता यज्ञ द्वारा है क्योंकि—

विद्वान्यजेत

विद्वान् यज्ञ करे । इत्यादि से अर्थज्ञान को यज्ञाङ्गता समझी जाती है । यह भी नहीं कह सके कि मन्त्रार्थविरुद्ध ब्राह्मण अप्रमाण है । क्योंकि ब्राह्मण संहिता के अन्तर्गत है । यदि कहो कि संहिता में भी कोई भाग अप्रमाण है सो नहीं । मन्त्रभाग भी वैसा हो तो क्या हानि है । वेद में विरोध को भी उक्त रीति से एकवाक्यता सिद्ध होने से मेरी तो कोई हानि नहीं । मन्त्र की व्याख्यारूप ब्राह्मण को प्रमाण न मानने पर तेरी व्याख्या की प्रामाणिकता पर भी सन्देह होगा । अस्तु—मन्त्र भी तो उक्त अर्थ का ही पोषक है जैसा कि " जातवेदोवपया " इस मन्त्र से वपाग्रपण की सिद्धि कही गई । इस से हिंसा वेदबोध्य सिद्ध है ॥

जो हिंसा को विहित नहीं मानता उस से पूंछना चाहिये कि हिंसा क्या अधर्म है ? यदि अधर्म है तो क्या १—वेदविहित न होने से ? या २—निषिद्ध होने से ? १—पहला पक्ष इस लिये ठीक नहीं कि हिंसा के अधर्म होने में प्रमाण नहीं । अधर्म वेदविरुद्ध को कहते हैं, वेदविरुद्ध उस को कहते हैं जो वेदविहित से भिन्न हो । वेदविहित वह है जो लिङ्लकारादि द्वारा आज्ञा का विषय हो ॥

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

अग्नीषोमीयं पशुमालभेत

इस वचन से आलम्भन की आज्ञा होने से हिंसा धर्म ही हुई। ऐसे ही—

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते

यहां भी जानो ॥ आलम्भन का अर्थ=कूटादिप्रायश्चित्तपूर्वक उपाकरण, रस्सी लपेटना, यूपसे बांधना, प्रोक्षण, स्रुच्याधार के पश्चात् समञ्जन, पर्यग्नीकरण, वपापकाना, अन्वारम्भण, अध्रिगु की आज्ञा के साथ शामित्रशाला को ले जाना, नीचे कुशा बिछाना, पश्चिमाभिमुख खड़ा करना, काशादि प्रायश्चित्त, संज्ञप्त होम, रस्सी खोलना, अङ्गाऽऽप्यायन, वपा उधेड़ना, उस का तपाना, उस का निकालना, उस का अभिघारण, एकादशावदान, उद्धरण, पशीजने को पूछना, उस का उत्तर देना, हविगुदकाण्ड जाघनी होम इत्यादि क्रियाओं को आलम्भन कहते हैं। इन में से किसी एक के लोप होने पर प्रायश्चित्त है, इस से यह सब आलम्भन पद का वाच्य है। इस से हिंसा वेदविहित है, इस से अधर्म नहीं। हिंसानिषिद्ध भी नहीं क्योंकि निषेधवचन कोई नहीं है। "माहिंसीः" का दूसरा अर्थ है। यह कह चुके हैं! "माहिंस्यात्सर्वाभूतानि" यह न संहिता में, न ब्राह्मण में है। प्रमाणता बतलाओ। यदि कहो कि मूल वेद के अविरुद्ध होने से प्रमाण है, सो भी नहीं। आप मूल वेद के ही अभाव को देखें। यदि मूलवेद दयानन्दोक्त अर्थ को ही कहता तो अविरोध होता। यह भी नहीं, क्योंकि प्रकरण विरुद्ध है। प्रकरण पशु का है। अन्यथा "एनम्" पद पशुवाचक क्यों होता। और आप भी कहते हैं कि "एनम् पशुम्"=इस पशु को। यदि प्रकरण नियामक न होता तो "इस को" कहने से "यजमान को" वा "घट को" क्यों न समझ लिया जावे। इस से प्रकरण से ही "पशु को" आप कहते हैं। इस से "माहिंसीः" का वह अर्थ नहीं। और—

सन्ते प्राणो वायुना गच्छतां सं यजत्रैरङ्गानि ॥

ये मन्त्र कैसे संगत होंगे। "आध्यात्मिक वायु प्राण बाह्यवायु से मिले, पशु के अङ्ग यज्ञ के साधन बनें"

यह उन का अर्थ है सो जब तक प्राण न जावें तबतक कैसे संभव है। इस से प्रकरणका नियम अवश्य कहना चाहिये कि हिंसा प्राप्त है। किस प्रकार हिंसा अधर्म वा निषिद्ध है? और हिंसा का तात्पर्य भूतमात्र की हिंसा वर्जित है। इस दशा में तेरे होम की सिद्धि भी घृतादि से कैसे होगी? बिना हुवे

दुग्ध नहीं निकलता और दुहना माता और बछड़े को दुःखजनक है। दुःखदायक अपूर्वजननानुकूलव्यापार ही हिंसा है।

पञ्चसूना गृहस्थस्य

यह वचन कण्डन्यादि की हिंसा का प्रतिपादन करता है। यदि इस में प्राणी के वध का नाम ही हिंसा होता तो अनुमोदक को भी हिंसक कहा जाना उक्त कर्म को हिंसा सिद्ध करता है। तथा च घृतादि बनने की जड़ हिंसा हुई तो समस्त वैदिक कर्म का लोप होजायगा। इस से सिद्ध हुआ कि हिंसा वेदबोध्य है॥

यजमानस्य पशून्पाहि

यह श्रुति (जो पशुवध के विरुद्ध प्रस्तुत की जावे) यज्ञाङ्ग पशुविषयक नहीं है किन्तु घरेलू पशुओं की रक्षा विधान करती है। यहां प्रकरण भी अन्य है। दर्शपौर्णमासानुष्ठान का यहां वर्णन है जिस में पशु का प्रसंग नहीं फिर किस की रक्षा प्रार्थना की जावे! इस से यह श्रुति भी तेरा इष्ट नहीं साधती॥

" बेल का वा खदिर का यूप हो " इत्यादि में जो महाभाष्य के प्रमाण से समाज ने कहा कि खदिरादि विधान नियमार्थ है। क्यों कि नियम का फल पाया जाता। इत्यादि। सार यह है कि जैसे कूटने बिना भी चावल निकल सके हैं ऐसे यूप बिना भी लोकतः यूपकार्य सिद्ध होसक्ता है। इसलिये जब बिना यूप के भी बाज़ार आदि लोक से घृतादि ले सके हैं तब यूप की क्या आवश्यकता है। इस प्रकार समाज जो यूप का प्रयोजन बताता है कि उस में बंधे यज्ञार्थ पशु दुग्धादि देंगे जिस से यज्ञ होगा सो व्यर्थ है। फिर समाज के मत में खदिरादि का नियम भी व्यर्थ है, कोई अपूर्व फल नहीं॥

और जो आप ने कहा कि पशुबन्धनार्थ यूप होता है। इस के पश्चात् जो कहा कि—" गौरनुबन्ध्यः " इत्यादि " ओत् " इससूत्र पर महाभाष्य में उदाहरण है, जिस से अग्नि देवता और सोमदेवता के गौ और बकरे का बांधना पाया जाता है न कि मारना। यह कथन भी असत् है। यह अनुबन्ध्यः पद बन्धनार्थक नहीं है किन्तु अवभृथ=यज्ञान्तस्नान के पीछे किये जाने वाले पशुकर्म का वाचक है। अग्नीषोमीय, सवनीय, अनुबन्ध्य ये ३ पशु होते हैं। इन में अग्नीषोमीय प्रथम और अनुबन्ध्य अन्त होता है। यदि

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

यहां अनुबन्ध्य पद का अर्थ बन्धन होता तो गौः कहना व्यर्थ था। इस अन्वय में कि—"अग्नीषोमीय अज बांधना" गौः यह पद अन्वित नहीं होसक्ता। यहां तो अज का अन्वय है क्यों कि गौः पद की आकाङ्क्षाफलाभाव भी है। और जो आपने कहा कि—

शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे

यह श्रुति हिंसा की निवर्तक है। सो नहीं। यह मन्त्र उन दुपायों और चौपायों के विषय में है जो यज्ञ के अङ्ग नहीं उन का यजमानप्रार्थ्य कुशल मन्त्र से बोधित होता है। न कि यज्ञाङ्ग पशुओं का न मारना।

और वात्स्यायन के मत से जो यह कहा कि मरे पशु को सुख कैसे हो सक्ता है क्यों कि शरीररहित आत्मा को भोग नहीं बनता। सो भी ठीक नहीं। यदि वात्स्यायन का यह मत हो तो मरने पीछे परलोक में कोई पुण्य का फल न चाहे, और इस दशामें किया कर्म निष्फल और बिना किये का फल पाना रूप दोष देहात्मवाद में कहते हुवे कैसे पारलौकिक सुख को न माने। तथाच—इस शरीर के नष्ट होने पर दूसरे शरीर से फल भोगता है, यह तात्पर्य है। इसी प्रकार बकरे का शरीर नष्ट होने पर पशु अन्य देह से पुण्यफल भोगता है॥

यदि कहो कि अध्वर यज्ञ का नाम है और अध्वर का अर्थ हिंसारहित है, फिर यज्ञ में हिंसा कैसी? सो भी नहीं। अध्वर शब्द में नञ् (अ) है वह निषेधार्थक नहीं, किन्तु अल्पार्थ है। अर्थात् जिस में थोड़ी हिंसा हो वह "अध्वर" है। हिंसा का थोड़ापन यही है कि बलवान् अनिष्ट का अनुबन्धी न होना। अथवा रागप्राप्त हिंसा जिस में न हो वह अध्वर है। तथा अध्वर शब्द यज्ञ में रूढ़ि है न कि यौगिक। इस लिये उस का अर्थ नहीं लिया जायगा। जैसे प्रवीण कुशल इत्यादि में धात्वर्थ की अपेक्षा नहीं होती। तथा च—हिंसावान् यज्ञ में अध्वर शब्द प्रवृत्त है सो हिंसा को ही कहता है। विधिपूर्वक हिंसा—हिंसा नहीं होती। जिस शास्त्र ने हिंसा को दोष बताया है उसी शास्त्रने यज्ञ में दोष नहीं बताया। फिर भला शास्त्रोक्त बात में क्या विवाद? विवाद तो वहीं है जहां शास्त्र नहीं। इस लिये शिक्षा रक्षा में अधिकारी राजपुरुषों में मारने वाले को हत्या नहीं लगती। यह शास्त्र ने कहा है। वह न्याय यहां जोड़ लीजिये। इसी लिये:—

SGDF Sri Gangadhar... Digital Foundation

मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषात् ।

जैमिनि ३ । ८ में और—

शमिता च शब्दभेदात्

यह ३ । ७ में कहते हैं कि शमिता अन्य ऋत्विजों से भिन्न है । इस से यज्ञ की हिंसा जैमिन्यादि की सम्मत हुई । यदि आप न मानें और जैमिन्यादि का प्रमाण न करें तो आप का यह लिखना व्यर्थ होगा कि "वेदार्थ निर्णय के लिये छहों शास्त्र प्रमाण हैं।" यदि सूत्र को माने तो तेरा मत गया॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।

मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥

यह वचन भी हिंसा को अधर्म नहीं बताता । विहित हिंसा अधर्म नहीं हो सकती । इसी लिये इस में "मोहादारभ्यते" कहा गया है । शास्त्र की आज्ञा से किया कर्म मोहमूलक नहीं, अथवा शास्त्र मनुष्य को अधर्म में प्रेरित नहीं करता । इस लिये यह लिखना सम्प्रदाय के अज्ञानमूलक है॥

और जो महाभारत अनुशासन पर्व के वचन हैं कि:—

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यम्० इत्यादि

वे भी आगे के वसु के वाक्य ३३२ से निषिद्ध हैं:—

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ।

छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ॥

इस प्रकार वसु (मध्यस्थ) ने देवतों के पक्षपात से कह दिया कि बकरे से यज्ञ करना चाहिये ॥

तथा भारत का यह वचन भी कि—

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम् ।

धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥

कामकृत कर्म की निन्दापरक है । इस का तत्व यह है कि धर्मव्याध ने जाजलि को उपदेश करते हुवे आत्मज्ञानसाधन अहिंसादि धर्म की प्रशंसा

करते हुवे, वैदिककर्म और कामकृत कर्म की निन्दा की है। अहिंसा की प्रशंसा के लिये निन्दा नहीं, इस न्याय से अहिंसा की स्तुति करता है। वस्तुतः तो एकवाक्यता से भारतादि का प्रमाण न मानने से भारतादि के वचनों से तेरी (आर्यसामाजिक की) इष्टसिद्धि नहीं क्योंकि वैदिकों के माने अर्थको तू नहीं मानता। यदि आप (आर्यसमाजी) हमारे मत (भारतादि) को मानते हैं तो मेरे मत का खण्डन कैसा? इस से तेरा वचन मूर्खों को बहकाने वाला ही है॥

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्।

यह मीमांसा का सूत्र जो आप ने उदाहृत किया सो इस का यह अर्थ है कि साक्षात् मूलवेद से विरुद्ध कोई वचन स्मृति आदि में हो तो न मानना। सो आर्यसमाजी यदि मूलवेद के विरुद्ध ब्राह्मणवाक्य दिखलावे तो अप्रमाण हो। ऐसा प्रमाण हम नहीं पाते और यदि तेरी व्याख्या से विरुद्ध पड़ता हो तो हो, हमारी क्या हानि है। क्योंकि हम को तो तेरी व्याख्या ही उपेक्षणीय है। अविरोध में मूलवेद कल्पना में प्रामाण्य सोचना चाहिये। इस लिये सर्वथा तेरा मत शिथिल ही है। अधिक दूसरे पत्र में कहूंगा॥

इस कारण अधिकारी वैदिकों के कर्मयज्ञ में हिंसा दोष नहीं लगाती। इस का अन्यत्र विस्तार से वर्णन है। यह स्पष्ट है॥

तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणाविशेषात्।

यह जैमिनि ने कहा है कि पशुधर्म=यूप में नियुक्त करना, काटना आदिकों का अग्नीषोमीय पशु में नियम है। यदि ऋषिवाक्य प्रमाण हो। अन्यथा तेरा मत भी उसी के तुल्य है इस का विचार ही क्या है। इति शिवम्॥

दूसरे पत्र का उत्तर—

तुम क्या प्रमाण मानते हो? इस प्रश्न के उत्तर में जो कहा कि चार वेदों की मूल संहिता। और इसमें स्वतः प्रामाण्य का यह प्रमाण दिया है कि:—

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्।

यह कपिल सूत्र संहिताओं को स्वतः प्रमाण कहता है सो ठीक नहीं। क्योंकि—

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः।

इस पूर्व सूत्र से वेदमात्र के ग्रहण में संहिता का ग्रहण सिद्ध नहीं। वेद पद का अर्थ संहितामात्र नहीं। कात्यायन महर्षि ने परिशिष्ट में—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

कहा है और जैमिनि ने भी कहा है कि—

वेदो वा प्रायदर्शनात् ।

परिशिष्ट परिभाषापरक नहीं । प्रामाणिक आयुर्वेदक होने से वेद यह व्युत्पत्ति होसकती है । इस से मन्त्र में भी परिभाषा की आपत्ति होने से वा मन्त्र भी वेद शब्द का भागी न रहेगा । परिभाषा के बिना व्यवहार नहीं चलसका । जैसा कि—

अदेङ् गुणः ।

इस व्याकरण की परिभाषा विना वहां काम नहीं चलसका इसी प्रकार वैदिक परिभाषा भी फलवती ही है । व्यवहार की सुगमता ही फल वा प्रयोजन है । इस से भी वेद पद=मन्त्रब्राह्मणात्मक समुदाय का ही वाचक है । इस प्रकार वेदसामान्य का विचार प्रस्तुत करके कपिल जी कैसे संहितामात्र का प्रमाण कहते ?

प्रमाणसिद्ध पदार्थ कितने हैं ? इस का उत्तर नहीं लिखा । इस में कारण वही (लेखक) जानता है । और जो प्रमाणसिद्ध यवादि द्रव्य पदार्थ लिखे सो अनुपयुक्त हैं क्योंकि वह प्रश्न का विषय नहीं । प्रश्न का विषय द्रव्य गुणादि थे । इस से उत्तर अनुकूल नहीं ॥

"जिस लिये उन का उपगम है" । इस का भी उत्तर ठीक नहीं दिया क्योंकि जब पदार्थ ही न बताये तब उन के प्रयोजन का बता सकना कब संभव था । अथवा दयानन्द मुनि के तात्पर्य को न समझने से जानिये ॥

प्रमाणों की प्रमाणता किंमूलक है ? इस प्रश्न के तात्पर्य को विना जाने जो

मूले मूलभावादमूलं मूलम्

यह साङ्ख्यसूत्र दिया, वह कारण के कारण मानने में अनवस्था दोष निवारणार्थ है, पर हमने कारणान्तर वा प्रमाणान्तर नहीं पूछा था, किन्तु यह पूछा था कि प्रमाणों की प्रमाणता अज्ञात का ज्ञापक होना, वा उस में अवर्तमान धर्म के अप्रकारक ज्ञान का उत्पादक होना प्रामाण्य है ?, सो इस को विना समझे लिखना केवल भ्रमकर है ॥

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः प्रमाणं न वा ?" इस छठे प्रश्न का समाधान प्रथम प्रश्न के अन्तर्गत बताया सो ठीक नहीं। पहला प्रमाण भले प्रकार प्रमाण सामान्यविषयक है। दूसरा प्रमाणविषय है। इस दशा में प्रथम से द्वितीय का समाधान नहीं हो सक्ता।

वेदोक्तकर्म कर्त्तव्य है या नहीं ? इस का उत्तर ठीक है॥

वेद के एकदेश (संहितामात्र) को मानने में क्या प्रमाण है ? इस का उत्तर कुछ नहीं दिया॥

वेदार्थनिर्णायक छः शास्त्र हैं। यह उत्तर ठीक है॥

स्मृतियों का प्रामाण्य है या नहीं ? इस का यह उत्तर तो ठीक है कि वेदानुकूलस्मृति प्रमाण हैं। परन्तु पुराणका यह अर्थ ठीक नहीं कि "जो पूर्व नवीन होता है" क्योंकि इस में रूढि अर्थ का त्याग है। और मुख्याऽमुख्य में मुख्य मानने के न्याय से भी विरोध है। इस से " ब्राह्मण पुराण हैं, भागवतादि नहीं " यह नष्ट है। क्योंकि ब्राह्मण पुराण नाम से प्रसिद्ध नहीं, किन्तु ब्राह्मण वेद नाम से प्रसिद्ध हैं। तथा च गोतम का सूत्र है कि—

विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्।

इस का भाष्य यह है कि—ब्राह्मण वाक्य तीन ३ प्रकार से विनियुक्त हैं। १ विधिवाचक, २ अर्थवादवाचक और ३ अनुवादवाचक॥ जैमिनिने भी—

शेषेब्राह्मणशब्दः।

कहा है। जिस का शबर भाष्य यह है कि मन्त्र और ब्राह्मण वेद है। इसी प्रकार—

वेदो वा प्रायदर्शनात्।

यहां ब्राह्मण में वेद पद का प्रयोग जैमिनि ने किया है सो ब्राह्मण के वेद होने पर संगत होता है। इस से ब्राह्मण पुराण नहीं॥

और जो प्रयोग (शब्द) अशुद्ध बताये हैं सो पूछना यह है कि " किं भाव्यः" में शब्द की अशुद्धि है वा अर्थ की ? शब्द की अशुद्धि इस लिये नहीं कि भू प्राप्तौ धातु से भावयितुं योग्यः भाव्यः यह शब्दसिद्धि संभव है। इस में व्याकरण का प्रमाण दूसरे पत्र में कहूंगा। नानारूपगुणैर्भाव्यम् * इस

* स्वामीजी इस सूत्र के भेद्यार में यहां इन की परिभाषा नहीं। केवल परत्व से स्वयं आश्वां भाव्यम् इस प्रयोग से॥

SGDF

प्रयोग से। भवन्तम् में परसवर्णाऽभाव लिखने वाले का प्रमाद है। यस्लेख-नीयम् में सन्धि अविवक्षित है। प्रश्नः यह एकवचन जात्यभिप्राय से है॥ तस्यापि उत्तरम् यह भी वाक्य होने से ठीक है। गीर्वाणवाणया भी ठीक है क्योंकि वाणी पद भाषा पद का पर्याय है। काकोपि शास्त्रार्थरसं पास्यति इस तेरे प्रयोग के समान॥

स्वतः प्रामाण्यं क्रियते। यह तेरा प्रयोग कैसे? प्रमाणता में करना नहीं बनता॥ प्रमाणानां प्रमाणम्० यह भी नहीं हो सकता। इस में किस प्रकार बोध है? यदि मानो कि प्रमाणों का प्रमाण? तो वह प्रमाण बताओ। नित्योनित्यानाम् के तुल्य प्रमाणवृत्ति प्रमाणत्वसंपादक यह प्रमाण है, यह समझना भी नहीं बनता इस में अनवस्था दोष आता है॥ षष्ठ प्रश्न को तृतीय प्रश्न लिखना अशुद्ध है॥ किन्तु के स्थान में किन्तु अशुद्ध है॥ ब्राह्मण वेद नहीं इस में हेतु न कहने से न्यूनता दोष है॥ इति शिवम्॥ शोकार्थ—आषाढ कृष्णा ७ सोमवार में यह शास्त्रकृत निर्णय हुआ कि न युक्ता वैदिकी॥

———•———

उत्तर—

हम लोग जो यज्ञ में हिंसा को अवैदिक मानते हैं, विवाद विषय के स्पष्ट करने के वाक्यों को देखने पश्चात् प्रमाणों पर विचार करते हैं॥

वायव्यं श्वेतमालभेत।

यह वचन यज्ञ में हिंसा को वेदबोध्य होना सिद्ध नहीं करता क्योंकि उक्त वाक्य में प्रथम तो पशु शब्द ही नहीं, यदि किसी प्रकार "श्वेत" विशेषण से विशेष्य पशु का ग्रहण हो भी जावे तो भी "आलभेत" क्रिया का अर्थ "मारे" नहीं है। किन्तु यजुः २४। २० पर महीधर ने भी "आलभते=नियुक्त करता है" अर्थ किया है। कोई नहीं कह सकता कि नियुक्त करना=मारना है॥

और यह जो कहा कि "विधिबोध्य, या—वेदबोध्य, वा—मन्त्रबोध्य है या नहीं" सो व्यर्थ है। क्योंकि आप के मत में विधि और मन्त्र दोनों वेद हैं, जब वेदबोध्य कहने से शेष दोनों का अर्थ आजाता। इस लिये तीन, ३ पद लिखने व्यर्थ और पुनरुक्त हैं। एक वेदबोध्य लिखना पर्याप्त था। आल-म्भन का अर्थ हिंसा के अतिरिक्त कात्यायन ने भी लिखा है। यथा पौर्णमा-सेष्टिप्रकरण में—

SGDF Sri Gargishwari Digital Foundation

संयौति जनयत्येत्वेति समं विभज्यासंह-
रिष्यन्नालभत इदमग्नेरिदमग्नीषोमयोः ॥

यह हृदय के आलम्भन में प्रयोग है। और

सहाज्यं देवस्यत्वेति श्रपणं माभेरित्यालभते ॥

यह पुरोडाशश्रपण विषय में आलम्भन का प्रयोग है। इत्यादि स्थलों में जैसे आङ्पूर्वक लभधातु का स्पर्शन अर्थ है वैसे ही—

वायव्यं श्वेतमालभेत।

यहां भी समझो॥

जातवेदोवपयागच्छदेवान्०।

इस मन्त्र को जो वपाहोम का साधक समझ कर लिखा है, सो भी आप का इष्टसाधक नहीं। आप ने जो पता (३ अष्टक, १ प्रश्न) दिया है, प्रथम तो ऋग्वेदादि में किसी एक का नाम स्पष्ट नहीं बताया फिर यदि अष्टक कहने से ऋग्वेद समझें सो भी नहीं क्योंकि उस में प्रश्न नाम से कोई ग्रन्थ विभाग नहीं है किन्तु अष्टक अध्याय वर्ग मन्त्र वा मण्डल अनुवाक सूक्त मन्त्र यह विभागक्रम है। यदि अष्टक मात्र को ठीक मानें, प्रश्न लिखना आप की भूल समझें सो भी नहीं क्योंकि ऋग्वेद के तृतीयाष्टक में ऐसी कोई ऋचा नहीं देखते। इस लिये जब तक यह न बतलाया जावे कि यह ऋचा कहां की है, तब तक उत्तर देना आवश्यक नहीं है तथापि कुछ कहते हैं। यह ऋचा चारों वेदसंहिताओं में से किसी संहिता की नहीं दीखती। न इस में विधि वचन की रीति पर पशुवध कहा है कि "पशु मारो" न अनुवाद की रीति पर पशुवध कहा, न अर्थवाद की रीति पर। केवल इतना कहने से कि—"हे अग्ने! वपा से देवों के प्रति जा" पशु का मारना नहीं कहा जासकता। जिस प्रकार कि अन्त्येष्टिकर्म में स्वयं मरे हुवे प्राणियों के उस२ देहावयव को लक्ष्य में रख कर कहा जाता है कि—

सूर्यंचक्षुर्गच्छतुवात्मात्मा।
द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा॥

चक्षु आत्मा आदि, सूर्य वायु आदि में चले जावें। इसी प्रकार यह भी

प्रतिपादन किया जाता है कि चिता फूंके जाते हुवे प्राणियों के देह की वपा आदि अग्निसंपर्क से वायु आदि में देवों में जावे। इस से यह नहीं कहा जासकता कि यह कार्य=वपा उधेड़ना पशु के वध विना संभव नहीं। लोक में देखा जाता है कि अपनी मौत मरे प्राणियों के भी वपा चर्म आदि उधेड़े जाते हैं॥

हृदयस्याग्रेऽवद्यति।

यह न वेदवचन है। न यह लिखा कि अमुक ग्रन्थ का वचन है। अवद्यानं और सः का सामानाधिकरण्य भी वक्ता के बोध की सुन्दरता को सूचित करता है॥

नित्य प्रति अनेक पुत्रादि अपने पिता आदि में से अनेक कारणों से मरे हुवों के देहों को अग्नि में होमते हैं। इस दशा में पशु जो मनुष्यों के उपकारक गौ घोड़ा ऊंट आदि हैं, उन के भी देहदाहादि में हिंसा नहीं हो सकती। आपने स्वयं लिखा है कि "इस में पशुपद नहीं है। यह कहा जा सकता है" तथापि आपने कोई समाधान नहीं किया कि पशुपद न होने पर भी क्यों पशुग्रहण किया जावे, और वध क्रिया न होने पर भी क्यों पशु वध में इस को प्रमाण माना जावे। इस लिये यहां पशु और उस का वध समझना निर्मूल है॥

वसन्तायकपिञ्जलानालभते।

इस का उत्तर भी पूर्वोक्त के तुल्य है। क्योंकि इस में भी आलम्भन किया का वही अर्थ है। जैमिनि सूत्र के प्रमाण से यह सिद्ध करना कि कपिञ्जल का अर्थ प्राणिविशेष है, व्यर्थ है। क्योंकि इस पर विवाद ही कुछ नहीं कि कपिञ्जल का अर्थ प्राणी है वा नहीं। असाध्य को सिद्ध करना व्यर्थ है किन्तु पशु का वध करना आप का साध्य है उस में आप प्रमाण दें। वह इस मीमांसा सूत्र से सिद्ध नहीं होता। आपने जो "जातवेदोवपया०" के व्याख्यान में टिप्पणी में "घृतेन=घृतवपाचे" अर्थ किया है, सो ठीक नहीं। यदि किसी प्रकार घृत शब्द से घृतस्य वपा का ग्रहण करो तो यह हमारे पक्ष में सुगमता होगी, न कि आप के पक्ष में। क्यों कि इस दशा में जहां २ वपाशब्द आवेगा, हम घृतस्य वपा का ग्रहण करेंगे॥

दृष्टः प्रयोग इति चेत्॥

यह सूत्र मीमांसादर्शन में ११। १। ३९ में है, ११ अ० प्र०८ म० इस

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

संकेत पर नहीं । और मीमांसा दर्शन में अध्याय का अ० । पाद का पा० सूत्र का सू० होसक्ता है । यही उस में क्रम है । हम नहीं जानते कि उस में अ० प्र० अ० क्यों लिखा है । इसी प्रकार पूर्व भी अस्तव्यस्त अशुद्ध प्रश्न लिख दिये थे । और एक आश्चर्य देखिये । यद्यपि हम इस पर विवाद नहीं करते कि कपिञ्जल शब्द प्राणिविशेष का वाचक है वा नहीं, परन्तु इस पर "दृष्टः प्रयोग इतिचेत्" प्रमाण देना ठीक नहीं । क्योंकि इस सूत्र में यह नहीं कहा गया है कि कपिञ्जल का अर्थ प्राणिविशेष है । हम उस सूत्र का शबर भाष्य नीचे लिखते हैं:-

"यदि कहा जावे कि बहुवचन का प्रयोग चार ४ आदि में देखाजाता है, जैसा चार ४ ब्राह्मण । ऐसे ही यहां भी कपिञ्जल शब्द का प्रयोग कपोत=कबूतर और मयूर=मोर में देखाजाता है । कबूतर बड़ा कहा जाता है, यह कपिञ्जल है, कबूतर नहीं, यह । मोर छोटा कहा जाता है; यह कपिञ्जल है, मोर नहीं, " यह ॥

इस भाष्य में यह नहीं लिखा कि ' कपिञ्जलानालभते, वाक्य इस का उदाहरण हो । तथा यह सूत्र सिद्धान्त पक्ष का भी नहीं किन्तु इस से पूर्व को-

बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पःस्यात् ११ । १ । ३८

यह सूत्र है । इसी पर यह—"दृष्टः प्रयोग इतिचेत्" ११ । १ । ३९ आशङ्कावचन है । और आगे:-

भक्त्येतिचेत् ११ । १ । ४०

यह आशङ्कानिवारण (निरास) सूत्र है । फिर आशङ्कासूत्र को सिद्धान्त सूत्र के स्थान में लगाना कैसे ठीक हो सकता है ?

यद्यपि मीमांसा दर्शन अध्याय १२ में अनेक प्रक्षिप्त वा वेदविरुद्ध सूत्र हैं (देखो पूर्व पृष्ठ ११७ में नमूने के लिये संस्कृत लेख में हम १२ सूत्र दिखला आये हैं) परन्तु " दृष्टःप्रयो० " इस सूत्र में कोई मांसहोम वा पशुवध की पुष्टि नहीं ॥

छागोवा मन्त्रवर्णात्

यह सूत्र मीमांसादर्शन अध्याय १२ में नहीं है । मिथ्या ही आपने १२ अ० का पता लिख दियाहै । फिर दूसरी बात यह भी है कि इस प्रकार के सूत्र से पशुवध का समर्थन भी नहीं होता क्योंकि उस में वध किया नहीं है ।

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

छाग शब्द मात्र लिखने से छाग (बकरे) का वध नहीं सिद्ध होसकता। यूं तो मनुष्य शब्द आजाने से कोई मनुष्यबलि सिद्ध करने लगेगा !!

छागस्य वपाया मेदसोनुब्रूहि।

यह मन्त्र चारों वेदसंहिताओं में नहीं है। न आपने कृष्ण यजुः का कोई पता दिया है किन्तु यजुर्वेद २१। ४१ में पाठभेद से "छागस्य वपाया मेदसो जुषेताम्" इत्यादि पाठ है उस में उस से पूर्व से अश्विपद का अन्वय है। अश्वि शब्द से वहां सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण सुगम है। इस दशा में समस्त प्राणी और अप्राणी में स्थित स्निग्ध भाग का उपयोग होने से व्याख्यान करना सुगम है जिस से पशुवध की सिद्धि किसी प्रकार संभव नहीं। जैसा कि निरुक्त १२। १ का प्रमाण संस्कृत में दिया गया (पृ० ११८ पं० ३-५) इस से आप का यह लिखना निर्मूल है कि "मन्त्र से भी हिंसा कही गई, इससे हिंसा यज्ञ का अङ्ग है"॥

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः॥

(यजुः ६। १५) जहां ऐसे स्पष्ट हिंसानिषेधक वाक्यों का भी हिंसापरक अर्थ हो, वहां पशुओं का कुशल नहीं। उस का मन्दभाग्य समझता हूं। जिस प्रकार आज अच्युताश्रम स्वामी जी हिंसा में विनियोग करते हैं, इसी प्रकार पूर्व भी किन्हीं वेदतत्त्वार्थ न जानने वालों ने इसका विनियोग किया जान पड़ता है, जिस को देखकर ही निरुक्तकार ने कहा था कि—

"अथाप्युपपन्नार्था भवन्ति ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह हिंसन् १। १५॥

यह शङ्का करके

यथो एतदनुपपन्नार्था भवन्ति इत्याम्नाय वचनादहिंसा प्रतीयेत। निरु० १। १६॥

इस से निरुक्तकार यास्क मुनि की यह ध्वनि जान पड़ती है कि अहिंसापरक वेदवचन से हिंसा नहीं करनी चाहिये। वे कहते हैं कि यदि हिंसा करते हुवे अहिंसापरक=हिंसानिषेधक वाक्यों से काम लिया जावे तो वेद अनर्थक होंगे। वेदों की सार्थकता इसी में है कि अहिंसक वाक्यों का विनियोग अहिंसा में ही हो॥ इसके अतिरिक्त कात्यायन महर्षि भी कहते हैं कि—

मन्त्रान्तैः कर्मादिः सांनिपात्योभिधानात्। का० श्रौ० १। ३। ५

अर्थ—मन्त्रों से जो २ काम करते हैं उस २ का मन्त्रों में वर्णन आने से

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

चाहिये कि मन्त्रों के अन्तवचनों से कर्मादि किया जावे। मन में विचार कर कर्त्ता निजकथनानुकूल ही कर्म किया करता है। सो यदि वेद में हिंसा अभीष्ट होती तो हिंसार्थयुक्त मन्त्र ही हिंसामें(कर्मकाण्ड में)विनियुक्त होते। परन्तु ऐसा नहीं है। इस दशा में वेद हिंसा का निषेध ही करता है न कि विधान। यह स्पष्ट है। ऐसा है तब कात्यायन ही भला अपने कथन और नियम के विरुद्ध, हिंसानिषेधक मन्त्रों को हिंसा में विनियुक्त करता हुवा कैसे लिखता कि-

उत्तानं पशुं कृत्वाऽग्रेण नाभिं तृणं निदधात्योषध इति।

का० श्रौ० ६। ६। ८

अर्थ-पशु को उलटा करके नाभि के आगे तृण धरता है और "ओषधे त्रायस्व" मन्त्र पढ़ता जाता है॥ इस से मैं यह नहीं मानता कि कात्यायन महर्षि ही अपने वचन नियम के विरुद्ध पशुरक्षा विधायक मन्त्र का विनियोग उलटा पशुवध में करता। मैं जानता हूं कि यह किसी और ने कात्यायन श्रौतसूत्र में मिला दिया तथा कात्यायनकृत श्रौत सूत्र तैत्तिरीय शाखापरक नहीं हैं किन्तु मूल (शुक्ल) यजुर्वेदपरक हैं। इस कारण तैत्तिरीय शाखा वा उस के ब्राह्मण के अनुसार उस की व्यवस्था लगाना ठीक नहीं। और मूल यजुर्वेद से विरुद्ध आपस्तम्ब पर कोई बुद्धिमान् श्रद्धा न करेगा कि-

मैनं हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति॥

"इस को मतमार" कहकर तीक्ष्ण धार से मारता है" भला यह उलटा विनियोग कौन मानेगा?

आपने यह जो कहा कि "मन्त्र की व्याख्यारूप ब्राह्मण०" इत्यादि। इस से आपने ब्राह्मण को वेद की व्याख्या होना स्वीकार किया, यदि स्वीकार किया तो व्याख्या मूल के अविरुद्ध ही प्रमाण होसकती है, नकि मूलमन्त्रों के विरुद्ध ब्राह्मणकृत व्याख्या विद्वानों को आदरणीय हो। हमारा व्याख्यान न तो मूल के विरुद्ध है, न हमारी व्याख्या में वेद के अन्य देशस्थ वाक्य विरुद्ध पड़ते हैं।"जातवेदो वपया०" का उत्तर पूर्व देदिया है।"अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" यह वचन चारों वेदसंहिताओं में नहीं देखा जाता, न इस वचन में वध करना कहा और 'आलभेत क्रिया का अर्थ 'मारे' भी नहीं हो सकता। आपने जो आलम्भन का अर्थ किया है कि-कूटादि प्रायश्चित्तपूर्वक उपाकरण, रस्सीलपेटना, यूप से बांधना, प्रोक्षण, स्रुच्याघार के पश्चात् समञ्जन, पर्यग्नीकरण, वपा पकाना, अन्वारम्भण, अध्रिगु की आज्ञा के साथ (पशु को) शामित्र शाला को लेजाना, (पशु के) नीचे कुशा वि-

SGDF

छाना, पश्चिमाभिमुख खड़ा करना,वाशादि प्रायश्चित्त, संज्ञप्त होम, रस्सी खोलना आदि आलम्भन का अर्थ है। आपके इस कथन में आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। वेदों में वध के विधान न होने और निषेध होने से और उस (वधादि) के त्याग में प्रायश्चित्त न कहने से यह आप का किया आलम्भन का अर्थ वेदविहित नहीं ॥

मैनं हिंसीः (यजुः ६ । १५)

इस स्पष्ट हिंसानिषेधक वाक्य से सिद्ध है कि हिंसा वेदविरुद्ध है ॥

मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि ।

यह संहिता का वचन न हो, पर आप के मत में तो अन्य पुस्तक भी माननीय हैं तब आप इस का अनादर करें सो ठीक नहीं। प्रकरण से पशु का ग्रहण हो तब भी पशु का वध न कहने और पशुवध का निषेध होने से(मैनं हिंसीः) हिंसा वेदविहित नहीं, निषिद्ध है ॥

आपने जो कहा कि "सन्ते प्राणो वायुना गच्छताᳬ समङ्गानि यजत्रैः। संयज्ञपतिराशिषा" (यजुः ६ । १०) अर्थ—"आध्यात्मिक वायु प्राण बाह्य वायु के साथ एक होवे, पशु के अङ्ग यज्ञ के साधन बनें" प्राण न जाने (न मारने) पर यह कैसे होसकता है? इस से प्रकरण का नियम अवश्य वक्तव्य है कि हिंसा ग्रहण करनी। उत्तर-इस का अर्थ यह है कि प्रकरण से हे पशो ! (ते) तेरा(प्राणः) प्राण वायु (वायुना) बाह्यवायु से (संगच्छताम्) संगत हो, (यजत्रैः) यज्ञसाधनों से तेरे (अङ्गानि) अङ्ग (संगच्छन्ताम्) संगत हों, (यज्ञपतिः) यजमान (आशिषा) आशीर्वाद से (संगच्छताम्) मिले ॥

संगमन=संगति=मिलना का अर्थ गमन=गति=जाना किसी प्रकार संभव नहीं फिर आप प्राण निकलने का अर्थ कहां से करते हैं? बाह्यवायुसंग के विना किसी प्राणी के प्राण नहीं ठहर सकते किन्तु सब जीव बाहर के वायु से श्वास लेकर ही जीवित रहते हैं, इस लिये बाह्यवायु के संग कहने से पशु के जीवन का आशिष् पायाजाता है, नकि मरना वा मारना ॥

यह जो आपने कहा कि—दुहे विना दुग्ध नहीं निकलता, और दुहना माता और बछड़े को दुःखदायक है। दुःखदायक अपूर्व जननानुकूल व्यापार का नाम ही हिंसा है इत्यादि, सो ठीक नहीं क्योंकि जिन गौवों का दुग्ध दुहा जाता है उन को विशेष भक्ष्य भोज्य दिया जाता है, उस उपकार के प्रत्युपकार में वह दुग्ध लिया जाता है सो हिंसाकर नहीं। यदि आप ऐसा मानेंगे तो आप के मत में भृत्यों को वेतन देकर दुःखद काम लेना भी हिंसा से न बचेगा। आप ने भी पहले हिंसा का यह लक्षण किया था कि

SGDL Sri Gangeshwari Digital Foundation

" प्राणवियोगानुकूलो व्यापारो हिंसा " इस दशा में दुग्ध निकालने में हिंसा नहीं पाई जाती। चुल्हा चक्की आदि में जो क्षुद्रजन्तुओं की हिंसा होती है वह यज्ञसम्बन्धिनी नहीं है किन्तु लौकिकी है। उस में प्राणी के वध का उद्देश भी नहीं किन्तु विना उद्देश है। फिर उस हिंसा (पाप) का भी प्रायश्चित्तभूत बलिवैश्वदेव नित्यकर्म ऋषियों ने बताया है जिस से उस का भी पाप होना स्पष्ट है। इसी प्रकार रुद्रयागादि में आप सरीखे जो लोग अज्ञान से पशुवध का उपदेश करते हैं वा कराते वा अनुमोदन करते हैं, वह भी पापजनक, अधर्म प्रायश्चित्तार्ह है ऐसा स्वीकार कीजिये। " यजमानस्य पशून् पाहि " यजुः १। १ इस को आप कहते हैं कि इस में यज्ञाङ्ग पशुओं की रक्षा का विधान नहीं, किन्तु घरेलू पशुवों की रक्षा का विधान है, सो आप का कथन इस लिये ठीक नहीं कि उस में " यजमानस्य " पद उपस्थित है जो यज्ञ करने वाले का नाम है, फिर घरेलू पशु का ग्रहण क्यों और यज्ञ के पशु का त्याग कैसे हो सक्ता है। सब ही यज्ञों में घृतादि के उपयोगार्थ पशुओं की रक्षा और प्रयोजन पड़ता है जो अवश्य उपदेश करना चाहिये। यूप का यह विधान कि वह खदिर=खैर (काष्ठविशेष) का हो, शास्त्र सम्मत है। उस का फल भी चाहे कोई जानता हो वा न जानता हो, उस से किसी के पक्ष की सिद्धि वा हानि नहीं। आप जो कहते हैं कि शास्त्रविधान से विरुद्ध मार्ग द्वारा लाये हुवे घृतादि से होम हो जायगा, इस से यूपादि व्यर्थ हैं, सो नहीं। यदि ऐसा हो तो मांसहोमार्थ भी क़साई आदि की दुकान के मांस से (आप के मत से) होम हो सकता है, तब यह दोष दोनों पक्ष में समान रहेगा। वास्तव में यह दोष देना ही नास्तिकता है कि अशास्त्रीय घृतादि सिद्ध होम हो सकता है; क्योंकि जिस का विधान हो वही कर्त्तव्य है॥

अनुबन्ध्य पद में हनन की शङ्का मत हो और उस का खण्डन भी न हो, हमारी क्या हानि है। यजमान को जहां दुपाये और चौपायोंकी रक्षा प्रार्थना का विधान है, वहां यजन क्रिया के सम्बन्ध से अवश्य यज्ञसाधन पशुवों की ही रक्षा सुख और जीवन का तात्पर्य है, न कि अन्य साधारण पशुवों का। यहां किये हुवे कर्मों का फलभोग परलोक में हो, इस से वध किये हुवे पशु को लोकान्तर वा अन्य योनि में पशुपना न रहने से पशु कह कर दिया आशीर्वाद संगत नहीं होता॥

"अध्वर" शब्द के अर्थ में जो "नञ्" का अर्थ आप "अल्प" करते हैं और निषधार्थ को नहीं मानते सो यज्ञ का मर्म न जानने से। निरुक्त में ध्वरति का अर्थ हिंसा और अध्वर=यज्ञ का अर्थ हिंसारहित है। सायणाचार्य ने भी-

अग्ने यं यज्ञमध्वरम् । ऋ० १ । १ । ४

इस मन्त्र के भाष्य में अध्वर का अर्थ अहिंसापरक ही किया है न कि अल्पहिंसायुक्त । इस प्रकार वेद में यज्ञ की हिंसा का निषेध होने से हिंसा वेदविरुद्ध और वेदनिषिद्ध है जो सब वैदिक पण्डितों को सर्वथा त्याज्य ही है॥

अथर्ववेद में भी हिंसायुक्त यज्ञ का निषेध है । यथा—

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ॥७।५।५॥

इस में बतलाया गया है कि गौ और कुत्ते तक उत्तम और अधम पशुओं से यज्ञ करते हैं वे अज्ञानी हैं अर्थात् यज्ञविधायक मन्त्रार्थों को नहीं समझते हैं । इस से स्पष्ट है कि आज कल जैसे आप लोग विना तत्व समझे यज्ञ में पशु-बलि का पक्ष लेते हैं, ऐसे लोगों को ही उक्त मन्त्र मुग्ध=अज्ञानी वा बेसमझ बताता है । इस मन्त्र में देवाः=यजमानाः सायणाचार्य ने भी लिखा है । इस से सायण मतानुसार भी सिद्ध हुवा कि यज्ञ में पशु मारना अज्ञानी=वेदार्थ न जानने वाले यजमानों का काम है जो वेदतत्त्वार्थ जानने वाले विद्वान् को नहीं करना चाहिये ॥

इस प्रकार यज्ञ में पशुवध के वेद से अप्रतिपादित होने, वेदविरुद्ध होने और निषिद्ध सिद्ध होने पर कौन विद्वान् इस का पक्ष लेगा ? कोई नहीं । अध्वर शब्द यदि यज्ञ में रूढि (विना अर्थ) होता तो निरुक्तकार इस का निर्वचन न करते और देवराजयज्वा निरुक्त के भाष्यकार भी न कहते कि—

ध्वरा हिंसा तदऽभावो यत्र

अर्थात् ध्वरा हिंसा का जिस में अभाव हो, उस को अध्वर=यज्ञ कहते हैं । इस से भी सिद्ध है कि यज्ञ हिंसारहित ही का नाम है न कि अल्प हिंसायुक्त का । और आप की यह कल्पना कि अध्वर का नञ्=अ, अल्पार्थ है, निषेधार्थ नहीं, यह केवल कपोलकल्पना है । अन्य कुछ नहीं ॥

आप जो कहते हैं कि जो शास्त्र हिंसा को दोष बताता है वही यज्ञ में हिंसा का विधान करता है तब शास्त्राज्ञा में विवाद क्या ? सो आप का कथन ठीक नहीं । येन शास्त्रेण लिखना था, यत् शास्त्रम् अशुद्ध है क्योंकि प्रत्यपादि क्रिया कर्मप्रधान है, कर्त्ता में तृतीया होनी चाहिये । सनातन वेद शास्त्र यज्ञ में हिंसा का प्रतिपादन भी नहीं करता । इस लिये यह दृष्टान्त भी व्यर्थ है कि शिक्षा रक्षा में नियुक्त राजपुरुषों को जैसे राजाज्ञानुसार किसी के मारने में दोष नहीं इसी प्रकार विहित हिंसा में दोष नहीं । क्योंकि दण्डविधायक वचनों के सहारे तो यज्ञ में पशु नहीं मारे जाते वे तो निरपराध मारे जाते हैं । स न्यायः का तन्न्यायः लिखना भी अशुद्ध है ॥

आपने जो जैमिनि सूत्र लिखा कि—

मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषात् ।

यह इस लिये ठीक नहीं क्योंकि इस सूत्र में जो हेतु दिया है कि "चोदनाविशेषात्"=वेद में विधान विशेष होने से। वेद में विधान नहीं है इस लिये यह हेतु सत्य नहीं और वेदविरुद्ध होने से त्याज्य है। हमारा यह लिखना कि "वेदार्थ निर्णय के लिये छः शास्त्र प्रमाण होंगे" वेदानुकूलता के तात्पर्य से था, न कि वेदविरुद्धता में कि जिस वेद का अर्थ निर्णीत करने को ये शास्त्र प्रमाण किये गये उसी वेद के विरोधार्थ इन को प्रमाण माना जावे। इसी से "शमिता च शब्दभेदात्" यह मीमांसा सूत्र भी उत्तरित समझिये॥

हमने "अनुबन्धं क्षयं हिंसाम्" इत्यादि भारत के वचन से हिंसा को तामस कर्म बताया था, इस का जो अब आप यह उत्तर देते हैं कि यह मोह से किये कर्म को तामस कहा है, शास्त्र की आज्ञा से किया पशुवध मोहकृत नहीं, शास्त्र मनुष्य को अधर्म में नहीं लगाता। यह आप का उत्तर इस लिये ठीक नहीं कि वहां भारत के उस वचन में अनुबन्ध क्षय, हिंसा सभी को मोहमूलक बता कर तामस बताया है, सत्शास्त्र कोई कहीं हिंसा का यथार्थ प्रतिपादन नहीं करता, वेदविरुद्ध शास्त्र जो शास्त्राभास हैं, उन का कहनाही क्या है॥

हमने जो यवादि बीजों से यज्ञ करने में भारत का वचन प्रमाण दिया था और बकरे का निषेध किया था, आप जो हमारे उत्तर में यह लिखते हैं कि उस विवाद के मध्यस्थ वसु ने बीजों से यज्ञ न करने और बकरे से करने का निर्णय कर दिया, इस लिये माननीय नहीं। आप का यह उत्तर इस लिये ठीक नहीं कि उस में ऋषियों का मत यह था कि बीजों से यज्ञ करना, देवतों का यह कि बकरे से, तब वसु ने मध्यस्थ बन कर निर्णय किया सो आर्षमत के विरुद्ध तथा पक्षपात से किया, निष्पक्ष नहीं, वहां स्पष्ट लिखा है कि—

वसुना पक्षसंश्रयात्

वसुने पक्षपात से निर्णय किया। इस लिये वैदिक विद्वानों को जो निष्पक्ष हों, माननीय नहीं॥

हमने जो भारत के वचनों से यज्ञकी हिंसा को धूर्तों का चलाया हुवा वेदविरुद्ध सिद्ध किया था उस का उत्तर जो आप यह देते हैं कि वहां धर्मव्याध ने जाजलि को उपदेश करते हुवे कामकृत कर्म और वैदिककर्म की निन्दा की है सो ज्ञान की प्रशंसामात्र है। यह आप का उत्तर इस लिये ठीक नहीं कि वहां तो स्पष्ट लिखा है कि—

धूर्तैः प्रकल्पितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ।

SGDF
Sri Gurgeshwari Digital Foundation

यह धूर्त्तों ने (यज्ञ में हिंसा) चलाई है, यह वेद में विहित नहीं। इस से वैदिक कर्म की निन्दा नहीं, किन्तु इस कर्म का अवैदिक होना और वेदविरुद्ध होना स्पष्ट है तथा धूर्तों का प्रचरित किया होना सिद्ध है॥

इस प्रकार से मीमांसादर्शन के उन सूत्रों की अवैदिकता सिद्ध होने पर उसी (मीमांसा) के मत से अप्रमाणता स्पष्ट हुई। यह वेद स्मृति भारत इत्यादि शिष्टसंमत ग्रन्थों के वाक्यों से यज्ञ में हिंसा के निषेध और अविहित होने से यज्ञ की हिंसा वैदिकों को त्यागने योग्य है, स्पष्ट है॥

द्वितीय पत्र का उत्तर–

हम ने वेद की स्वतःप्रमाणता में यह प्रमाण दिया था कि–

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्।

सांख्यसूत्र। आप इस में ब्राह्मण सहित वेद का ग्रहण करते हैं सो इस में ब्राह्मण ग्रहणार्थ कोई पद नहीं। इस से आप का कथन प्रमाण नहीं॥

मन्त्र ब्राह्मण का परिभाषासिद्ध वेदत्व सर्वत्र नहीं माना जासकता। क्योंकि परिभाषा जिस ग्रन्थ में हो उसी के लिये हो सकती है न कि सार्वत्रिक। यह परिभाषा सांख्य की नहीं, किन्तु कात्यायन सूत्र की है, इस दशा में कपिल जी सांख्य में वेदपद से मन्त्र ब्राह्मण दोनों का ग्रहण नहीं कर सकते॥

प्रमाण सिद्ध कितने पदार्थ हैं? इस प्रश्न का उत्तर यदि इस लिये ठीक न था कि प्रश्न का अन्य अभिप्राय था तो वह अभिप्राय स्पष्ट करना था॥

"यदर्थं तेषामुपगमम्," यह नपुंसकलिङ्ग लिखना दुर्बल होना सूचित करता है॥

प्रमाणों की प्रमाणता किस प्रकार की? यदि आप ने यह प्रश्न इस अभिप्राय से किया था जो अब इस पत्र में लिखा है कि "अज्ञात का जतलाने वाला प्रमाण है वा उस में अवर्त्तमान धर्म के अप्रकारक ज्ञान का उत्पादक प्रमाण है?" यदि यह विषय था तो प्रश्न ही व्यर्थ था क्योंकि इस प्रश्न के दोनों पक्ष एकार्थ हैं, भिन्नार्थ नहीं। क्योंकि दो नञ्=निषेध मिल कर "हां" को सिद्ध किया करते हैं॥

पुराण शब्द की हमारी की हुई यह व्युत्पत्ति कि "जो पुराने समय में नया बना था" योगरूढि अर्थ को नहीं त्यागती। सृष्टि प्रलय वंशादि के वर्णनयुक्त होने से ब्राह्मणों की पुराणता सिद्ध है॥

आप ने जो सूत्र न्यायदर्शन का लिखा है कि–

विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्।

और इस का वात्स्यायन भाष्य लिखा है सो यह सूत्र केवल वेदपरक नहीं, किन्तु शब्दप्रमाणपरक है। शब्द प्रमाण में वेद ब्राह्मण आदि ग्रन्थ

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

मात्र संगृहीत हैं, इतने से वे सब ग्रन्थ वेद नहीं बन बैठते । इस लिये गोतम वा वात्स्यायन के मत से ब्राह्मण वेद नहीं हो जाते । जैमिनि ने जो-

शेषे ब्राह्मणशब्दः

सूत्र द्वारा ब्राह्मण संज्ञा की है, सो उसी जैमिनि ने-

शेषः परार्थत्वात्

इस सूत्र में शेष का अर्थ परार्थ होना बतलाया है, अर्थात् जो पराया= अन्य ग्रन्थ वेद का अर्थ करता है वह शेष ब्राह्मण कहाता है इस से वेदार्थ करने वाले ब्राह्मणों का वेद से भिन्न होना सिद्ध हुवा न कि वेद के अन्तर्गत होना॥

"मन्त्र और ब्राह्मण वेद हैं" यह शबर भाष्य जैमिनि के अनुकूल नहीं क्योंकि यह भाष्य जैमिनि के सूत्र —" शेषः परार्थत्वात् " से विरुद्ध है ॥

प्रयोगों की अशुद्धियों के समाधान में आपने जो कहा कि विचारश्च भाव्यः में शब्द की वा अर्थ की अशुद्धि है ? शब्दाऽशुद्धि का समाधान इस से ठीक नहीं कि वहां भूधातु का प्राप्ति अर्थ नहीं घटता । नामरूपगुणैर्भाव्यम् । यह उदाहरण देकर आप हमारे पक्ष (विचारेण तृतीया) की पुष्टि करबैठे॥

भवंतम् में परसवर्णाऽभाव लेखक का प्रमाद तब माना जाता जब कि अन्य अनेक स्थलोंमें ऐसा न होता और आपने हरतालसे पीला शोधन न किया होता॥

यत्लेखनीयम् में सन्धि अविवक्षित होती तो यत् लेखनीयम् ऐसा पृथक् लिखा होता ॥

प्रश्न बहुत हैं तब एकवचन लिखना जाति के अभिप्राय से भी ठीक नहीं । ऐसा होता तो प्रश्नों में बहुत्व न करते ॥

गीर्वाण वाण्या लेख्यं में हमारा आक्षेप वाणी शब्द के प्रयोग पर न था किन्तु लेख्यं पर अनुस्वार को हमने अशुद्ध लिखा था, क्योंकि अवसान था। आपने हमारे रेखा नीचे खींचने पर भी न समझा कि क्या अशुद्धि है ॥

" प्रमाण करने " में करना असिद्ध बताना इस से ठीक नहीं है कि अङ्गीकार आदि में भी कृञ् धातु का प्रयोग होता है ॥

प्रमाणानां प्रमाणम् में प्रमाणानाम् का अर्थ प्रामाणिक ग्रन्थ है ॥

किं ते प्रमाणम्, तत्सिद्धाः पदार्थाः कति, यदर्थं तेषामुपगमः इन तीन वाक्यों का एक में समावेश होने से हमारा तृतीय प्रश्न लिखना ठीक है । आप यदि इन को ३ माने तो भी ५ वां कहना बनेगा, न कि छठा । किन्तु= किञ्च क्यों अशुद्ध है? हमने ब्राह्मणों के वेदत्व न होने में कोई हेतु न दिया हो, तब भी न्यूनता नहीं, क्योंकि हमारा पक्ष निषेध था, आपका पक्ष इनको वेदत्व सिद्ध करना था, बस जब आप के दिये हेतुओं का खण्डन होगया तो ब्राह्मणों को वेदत्व स्वयं न रहा, हम को प्रमाण देना आवश्यक ही क्या है ? ॥इति॥

न (अन्यकृत) पुस्तकों पर
मीशन नहीं दिया जाता

धानविधि ≡) सत्यीक्षाकर ≡)
त्यनारायण की सत्य कथा -)॥
राधास्वामीमतखण्डन -)
शास्त्रार्थ कलकत्ता =)
पतिव्रतधर्मप्रकाश ।।)नारीभूषण ।=)
अबलासन्ताप ≡) शास्त्रार्थ खुरजा -)
पतिव्रताधर्ममाला)॥ बालाबोधनी ।-)
शिशुशिक्षा १ भाग)।। २ भाग -)॥
३ भाग =) ४ भाग ।) चारों भाग ॥)
चरित्र १ भाग ।-) २ भाग ।-)
ग ।-) ४ भाग ।-) चारों भाग१।)
* नारायणीशिक्षा गृहस्थाश्रम १।)
दमयन्तीस्वयंवरनाटक ≡)
मोहमीमन्त्र)॥ पातञ्जलयोगदर्शन २)
सूर्यसिद्धान्त २) बढ़िया २।)
पू॰ का स्वामि चित्र ॥=) विलायती ॥।)
भारतगौरवादर्श ।) वर्णव्यवस्था =)
प्रायश्चित्तादर्श ।) गङ्गामाहात्म्यप्र० =)
महर्षिवियोग—शोक -) शिक्षाध्याय)॥।
वल्लभकुलचरित्रदर्पण।) वल्लभकुलइति-
हास नाटक ।) हिन्दब्रिटानियां -)
स्वर्गप्राप्ति ≡) ब्रह्मशक्ति ≡)
ास्त्रार्थ आगरा =) वेश्यालीला)॥
प्रबन्धमञ्जरी ।-) अंग्रेज़ीकीसीढ़ी ॥।)
ठीजनेऊ का विवाह -)
(स्वामीदयानन्द मक्कार था)।॥
ुष्यजन्म की सफलता)॥
र्योदय ।) मनुष्यसमाज)॥
हिन्दू औरनमस्तेकाअन्वेषण)।॥
मीजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र)।।
येष्टिकर्म)।॥ कृश्चनमतदर्पण)।।
ईमतलीला)। जीवात्मा)।।
ासपुराण स्मृति नहीं)॥
धिकार मीमांसा -)

ईसाईमतपरीक्षा)।। पौराणिकदर्पण)॥
पं० रामचन्द्रवेदान्ती का उत्तर)।
पुरुषसूक्त)।। भूतनिर्णय -)॥
विरजानन्द जी का जीवनचरित्र)।॥
शिवाजी का जीवनचरित्र ।)
हकीकतराय का जीवनचरित्र)॥
आर्यसमाज के नियमों का वेदमन्त्रों
से सम्मेलन)॥
आर्योजागृतहो)।॥ शिक्षावली)॥
पं० गुरुदत्त काचित्र-)गायत्री)॥रङ्गीन-)
पं० लेखराम का चित्र सादा -)
गृह्यचिकित्सा ।) वैदिकधर्मप्रचार ॥।)
महाशङ्कावली १ भाग)। २ भाग)।
मृतकश्राद्ध खण्डन)।। गङ्गा की नींद)।
शिवलिङ्गपूजाविधान)। सुशीलादेवी)।
शङ्करानन्द के उपदेश)। के दो
हेविसकी राय)। के २। ईसाईमतखण्डन)।
ऐतिहासिकनिरीक्षण प्र० =) द्वि०भाग≡)
यथार्थसुखाभिवर्णन -)॥
यथार्थशान्तिनिरूपण ।)
वीरता पर व्याख्यान -)॥मृत्युपरीक्षा॥)
क़वायदपटवारियान ।)
मार्शमैंसहिस्टरी संक्षिप्त अंग्रेज़ी ।=)

भजनपुस्तकें—

भजनबत्तीसी १ भाग)॥ द्वि०)॥ तृ० -)
चतुर्थ भाग)॥ चारों ≡)।
भजन पुस्तक)॥ *ज्ञानभजनावली =)
संगीतसुधाकर =)
भजनेन्दु-नयेअड़तालीभजनोंसहित-)
रामायण का आल्हा १ भा०)। द्वि०भाग)॥
स्त्रीभजनमाला -)। संगीतसुधासागर-)
धर्मबलिदान आल्हाखण्ड -)॥
सजीवनबूटीबड़ी-)। भक्तमनोरञ्जन-)
सभाप्रसन्न नवलसिंहकृत ≡) उर्दू ≡)॥
भजनविलास -)
शान्तिसरोवर =,भजनामृतसरोवर =)।

SGDF

सामवेदभाष्य का पूर्वार्ध समाप्त हो गया ५।) कमीशन छोड़कर ४)
☞ मनुस्मृतिभाषानुवाद १।) बढ़िया काग़ज़ १॥) सुनहरी छापा २॥) ही
श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।-) बढ़िया ।≡)
ईशोपनिषद्भाष्य -) केनोपनिषद्भाष्य -)॥
कठोपनिषद्भाष्य ।)
दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर "भास्करप्रकाश" २।=) कमीशनछोड़कर२)
*हितोपदेश भाषानुवाद तथा श्लोक १)
मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा ।=) दिवाकरप्रकाश ।)
विदुरनीति भाषाटीकासं० ।-) सजिल्द ।≡)
श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≡)
वेदप्रकाश मासिकपत्र के प्रथम भाग १ वर्ष का ॥=) द्वितीय ॥=) तृतीय ॥=)
चतुर्थ ॥=) पञ्चम ॥=) पांचों भाग साथ कमीशन काटकर २॥) सजिल्द ३)
संस्कृत स्वयंसिखाने वाली संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय पुस्तक -)
तृतीय पुस्तक =)। चतुर्थ ।=) चारों की कच्ची जिल्द ।≡) पक्की जिल्द ।॥)
संस्कृतप्रवेश)॥ हारमो० गैड ।=)
संस्कृत-भाषा-प्रथम श्रेणि (रीडर) -)
ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः -)॥ नियोगनिर्णय =)
अज्ञाननिवारण चतुर्थ भाग मूल्य =)
वैदिकदेवपूजा प्रसिद्ध व्याख्यान -)
मुक्ति और पुनर्जन्म -)। नमस्ते)।
ईश्वर और उसकी प्राप्ति -) आल्हामनु ॥=)
वीर्यरक्षा ≡) हारमोनियम ।=)
वैशेषिकदर्शन भाषानुवाद १)
पञ्चकन्याचरित्र)॥ द्रौपदी चरित्र -॥

वेश्यानाटक ।) देवीभागवतपरीक्षा)॥
गणरत्नमहोदधि १) विवाह के मन्त्र)॥
चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)।
प्रश्नोत्तररत्नमाला -) भागवतविचार -)
नालिकाविष्कार-जिस में प्राचीन बन्दूक आदि के प्रमाण हैं)॥
विवाहसयोदर्पण -) विश्वकर्मप्रकाश १)
बालविवाहनाटक)॥ कर्मवर्णन)॥
आर्यसमाज के नियम नागरी ≡)। १०० सैंकड़ा, अंग्रेज़ी में ।) १०० सैंकड़ा
व्याख्यानका विज्ञापन-जो चार जगह ख़ानापुरी करके सब उपदेशकों के काम में आता है =) १०० सैंकड़ा
पौराणिकधर्म और थियासोफी)॥।
नागरी रीडर नं० १ मूल्य)। नं० २ मूल्य -)
सन्ध्योपासन)। १०० का १।) ५०० को ५)
टके सेर लक्ष्मी)॥ ऋषिचरित्र -)
भागवतपरीक्षा)।
जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलय ≡) नमस्तेचित्र)॥
१४ विद्या ६४ कला)।
गाज़ीमियां की पूजा)॥ ३ व्याहृति)॥।
पाखण्डगजकेशरी)॥ फलितज्योतिष -)
(नवीन) आर्यमतमार्तण्ड ।) ओ३म्)॥
अष्टाध्यायी मोटा अक्षर ।) धातुपाठ ।)
वृक्षों में जीवनिर्णय)॥ ब्रह्मकीर्तन)॥
वीर्य्यरक्षण)॥ कन्यासुधार -)
सन्ध्योपासनमीमांसा -) मतनिर्णय -)
ईश्वरसिद्धि =)॥ कुरीतिनिवारण -)।
अङ्कगणितार्यमा ≡)॥ होमयज्ञ =)॥
शास्त्रार्थरानीगंज)॥ सत्यबोध -)

३) में ॥) और १०) में २) कमीशन छोड़े जायंगे। सर्वसाधारण को सामवेद मनु भाषानुवादादि पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है

पता-तुलसीराम स्वामी-मेरठ